

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180598

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^{H 82}
M 42 S Accession No. G. H. 2797

Author माथुर , जगदीशचन्द्र

Title झारदीया १९५९

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सत्साहित्य प्रकाशन

शा र दी या

—एक भावपूर्ण मौलिक नाटक—

जगदीशचन्द्र माथुर

पुस्तक भंड के निमित्त है

१९५९

संस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मन्त्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५९

मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक .
नेशनल प्रिंटिंग वर्कर्स
(दि टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस),
१० दरियागंज, दिल्ली

**मामा वरेरकर को,
जवानी जिनका पीछा ही नहीं छोड़ती**

प्रकाशकीय

हिन्दी के पाठक प्रस्तुत पुस्तक के लेखक से भली-भांति परिचित हैं। पिछले २५ वर्षों में उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की है और नाटक-साहित्य में अपना विशेष स्थान बना लिया है। उनके कई नाटक विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हुए हैं और कई सफलतापूर्वक मंच पर खेले गये हैं। उनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे पढ़ने में तो अच्छे लगते ही हैं, मंच पर भी उन्हें बिना किसी खास कठिनाई के खेला जा सकता है।

‘शारदीया’ उनकी नवीनतम कृति है। इससे पहले उन्होंने उड़ीसा में स्थित ‘कोणार्क’ पर उसी नाम से एक सुन्दर नाटक की रचना की थी। वह कृति बहुत ही लोकप्रिय हुई। प्रस्तुत नाटक की घटना भी उन्होंने इतिहास से ली है और बड़े ही भावपूर्ण ढंग से उसे पाठकों के सामने रखा है। थोड़े-बहुत ढंग उन्होंने अपनी ओर से भी भरे हैं, जो स्वाभाविक था; लेकिन उससे नाटक की ऐतिहासिकता में कोई अंतर नहीं पड़ने पाया है। अपने प्राक्कथन तथा ‘नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि’ लेख में उन्होंने सारी बात स्वयं स्पष्ट कर दी है। इतना ही नहीं, अखिल भारतीय माध्यम के रूप में हिन्दी-नाटक की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने पश्चिष्ट में एक बड़ा ही सारगर्भित लेख भी दिया है।

लेखक की अन्य कृतियों की अपेक्षा यह नाटक अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए ही नहीं कि इसका कथानक हमारे इतिहास की अत्यन्त मार्मिक घटनाओं पर प्रकाश डालता है, बल्कि इसलिए भी कि इस रचना में अधिक प्रौढ़ता है और जिन विभिन्न रसों की इसमें सृष्टि हुई है, उनका बड़ा ही सुन्दर और सफल परिपाक हुआ है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह नाटक हिन्दी-जगत में बड़े चाव से पढ़ा जायगा और इसका अन्य भाषाओं में भी अनुवाद होगा।

—मंत्री

प्राक्कथन

कुछ वर्ष हुए मुझे नागपुर म्यूजियम में एक असाधारण वस्त्र देखने को मिला। उसकी लम्बाई पांच गज से कुछ अधिक—यानी एक साड़ी के बराबर है, किन्तु वजन उसका केवल पांच तोला है। कपड़े की बुनाई अत्यन्त महीन है। धवल रंग की इस साड़ी में कुछ ऐसी आभा है, जो आज-कल के वस्त्रों में मश्किल से पाई जाती है। म्यूजियम के अधिकारियों ने इस वस्त्र को शीशे से मंडित एक केस में प्रदर्शित कर रक्खा है। केस के नीचे इस असाधारण वस्त्र के निर्माण की कथा अंकित है। उसके अनुसार इस साड़ी या वस्त्र को ग्वालियर किले में एक तहखाने में बुना गया और इतनी बारीक बुनाई के लिए बुनकर ने अपने अंगूठे के भीतरी नाखून में सूराख कर लिया था ताकि वह ढरकी यानी 'शटल' का काम दे सके। बुननेवाला व्यक्ति राष्ट्रद्रोह के अपराध में दौलतराव सिंधिया की आज्ञा से सन् १७९५ में खर्दा के उस इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध में बन्दी बना लिया गया था, जिसमें मराठों ने अपनी संकुलित शक्ति से हैदराबाद के निजाम को बुरी तरह पराजित किया था। पहले तो सिंधिया ने उस व्यक्ति को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी थी, किन्तु बाद में ग्वालियर के सरदार जिन्सेवाले के विशेष अनुरोध पर उसे आजीवन कारागार का दण्ड दिया गया। ग्वालियर के किले में भूगर्भस्थित कुछ कक्ष राजा मानसिंह तोमर ने अपनी रानियों के विलास के लिए बनवाये थे। मुगलों के काल में ये कक्ष कारागार की तरह इस्तेमाल होने लगे। उसी तहखाने में औरंगजेब ने मुराद को बंदी किया और उसका वध कराया था और संभवतः उसीमें इस अज्ञात बन्दी को भी रक्खा गया।

मन और तन को अंधेरे और घुटन के बन्धन में जकड़नेवाले उस कारागार में इस कलाकार बन्दी को किस अजस्र सौन्दर्य से प्रेरणा के विरामहीन घूट मिले—इस प्रश्न ने मेरी कल्पना को उत्तेजित किया और तभी नरसिंहराव और उसकी प्रेयसी की काल्पनिक मूर्तियां सजीव हो गईं।

मैं जानता हूँ कि इस नाटक के नरसिहराव का उस अज्ञात बन्दी के व्यक्तित्व से सम्भवतः कोई साम्य नहीं है। शायद यह अज्ञात बन्दी बिल्कुल दूसरे ही ढंग का व्यक्ति रहा हो, किन्तु नरसिहराव की जो मूर्ति एकबारगी मेरे मन के दर्पण में उतरती, तो फिर खिची ही रह गई, उसे मिटाने की क्षमता मुझमें नहीं है। प्रजापति संहारक कैसे बन सकता है? हां, आलोचक-वृन्द भले ही रुद्र रूप हो, संहार-कार्य संपन्न कर लें।

अस्तु, तत्कालीन इतिहास को टटोलते-टटोलते यद्यपि नरसिहराव जैसा व्यक्ति तो नहीं मिला, अन्य सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में मिली कि नाटक का ढांचा आप-ही-आप तैयार हो गया। बायजाबाई के अतिरिक्त तो और ऐतिहासिक पात्र सामने आये, जिनकी चरित्रगत विशेषताएं और जेनके कार्यकलाप मनगढ़न्त कथाओं के पात्रों से भी अधिक नाटकीय, संघर्षपूर्ण और रोचक जान पड़े। सखाराम उर्फ शर्जेराव घाटगे की करतूतों का याथातथ्य वर्णन ही एक लोमहर्षक घटनाचक्रों से परिपूर्ण उपन्यास बन जायगा। दौलतराव सिधिया का जीवन भी अपूर्ण आकांक्षाओं, सतत विलासप्रियता, सजग कूटनीतिज्ञता और आसन्न दुर्बलताओं का सघन गुंज जान पड़ता है। इनके अतिरिक्त नाटक के अन्य पात्र भी तत्कालीन मराठा-इतिहास से ही लिये गए हैं, केवल सरनाबाई और रहीमन को छोड़कर। लगभग सभी ऐतिहासिक पात्रों और नाटक में प्रस्तुत ऐतिहासिक तथ्यों और परिस्थितियों का ब्योरेवार विवरण मैंने 'नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' नामक लेख में दिया है, जो आगे के पृष्ठों में पाठकों को मिलेगा। पाठक उसे अवश्य पढ़ें।

मुमकिन है, कुछ पाठकों और दर्शकों के मन में शंका उठे कि नाटक में हिन्दू-मुसलमानों के मेल और आपसी धार्मिक सहिष्णुता का उल्लेख आज की भारतीय और पाकिस्तानी परिस्थिति का तत्कालीन इतिहास पर आरोपण-मात्र है। किन्तु सच तो यह है कि खर्दा के युद्ध और सन्धि का यह पहलू पूर्णतः इतिहासप्ररक है, संवाद में हिन्दू-मुसलमानों के मेल-सम्बन्धी कुछ वाक्य तो ज्यों-के-त्यों संधिपत्र से लिये गए हैं। उपरोक्त लेख में आधार-सामग्री का संदर्भ-सहित विवेचन किया गया है।

अंतिम दृश्य में नायक का स्वगतालाप अभिनय-निर्देशकों के लिए

शायद सरदर बन जाय, किन्तु रंगमंच-विधाताओं और दर्शकों से इतना ही कहूंगा कि गहनतम भावनाओं के उद्वेलन में भी उतने ही नाटकीय तत्व मिल सकते हैं जितने बाह्य परिस्थितियों के संघर्ष और घटनाचक्रों की गति में। मर्मज्ञ पाठक और दर्शक निश्चय ही बन्दी को बांधनेवाली जंजीरों की खड़कन से परे उसकी उन्मुक्त स्मृतियों और उसकी स्वच्छन्द कल्पना में सीमाहीन आलोक और निर्बाध गति की झनकार सुन पायेंगे।

‘शारदीया’ का ढांचा मैंने सन् १९५४ में तैयार किया था और तभी इसके सात दृश्यों में से तीन लिखे गए और ‘कल्पना’ मासिक पत्रिका में प्रकाशित भी हुए और पटना से ब्राडकास्ट भी किये गए। उसके बाद आल इंडिया रेडियो में आने के बाद मैंने जान-बूझकर कुछ वर्षों के लिए ग्रन्थ-रचना से संन्यास-सा ले लिया। इस वर्ष अपनी कुछ अधूरी रचनाओं को पूरा करने की उमंग मन में उठी और उसी सिलसिले में ‘शारदीया’ को भी वर्तमान रूप में पूरा कर दिया।

यद्यपि मैं १९३५ के पहले से नाटक लिखता रहा हूं, तथापि साहित्यिक क्षेत्र में मैं अपनेको अभी भी एक ‘एमेचर’-मात्र पाता हूं। हिन्दी का नाट्य-साहित्य अभी इतना क्षीण है कि जो कुछ भी लिखा जाय, बिल्कुल निरर्थक तो नहीं होगा। इसी कारण मैं कुछ रचनाएं प्रस्तुत करने का साहस भी कर रहा हूं, वरना तो मुझ जैसे ‘एमेचर’ के लिए तो मौन ही श्रेयस्कर होता।

नई दिल्ली

शरद् पूर्णिमा, १९५९

—जगदीशचंद्र माधुर

नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सन् १७९५ की ११ मार्च को मराठों और हैदराबाद के निजाम के बीच खर्दा का वह युद्ध हुआ था, जिसमें वह व्यक्ति बन्दी किया गया, जिसने अपने बन्दी-जीवन में नागपुर-संग्रहालय में प्रदर्शित अद्भुत साड़ी को बुना था। इस नाटक में खर्दा के युद्ध की झांकी दी गई है और उसके पहले और कुछ बाद तक मराठों की राजधानी पूना में जो राजनैतिक उलटफेर हुए उनकी ओर संकेत किया गया है।

‘न्यू हिस्टरी ऑफ द मराठाज़’ के लेखक सरदेसाई ने खर्दा के युद्ध को ‘दि बैनिशिंग पिलकर’ यानी ‘लुप्तप्राय ज्योति’ की संज्ञा दी है। मराठा-साम्राज्य का अवसान सन् १८०२ के मराठा-ब्रिटिश-युद्ध में हो चला। लेकिन उसके सात वर्ष पूर्व खर्दा के युद्ध में मानो बुझते दीपक की अंतिम लौ उठी और एकबारगी सारे भारत में मराठों की केन्द्रीभूत शक्ति की धाक बैठ गई। ज्योति क्षणिक थी और वस्तुतः उस विजय में ही पराभव के लक्षण विद्यमान थे।

युद्ध का कारण था मराठों द्वारा निजाम से तीन करोड़ रुपये की चौथ की मांग। बहुत पहले निजाम ने पेशवा बाजीराव प्रथम के समय में ही मराठों को चौथ देना स्वीकार किया था, लेकिन देने में चूक की; मराठों का पावना बढ़ते-बढ़ते सन् १७९३ तक तीन करोड़ रुपया हो गया।

उन दिनों मराठों के प्रमुख थे पेशवा माधवराव द्वितीय, लेकिन वह अल्पवयस्क थे और पूना में समूची सत्ता नाना फडनवीस, (सरदेसाई उन्हें फडनिस कहते हैं) के हाथ में थी। मराठा-साम्राज्य के दूसरे प्रमुख नेता थे सिंधिया, जिनकी अपनी राजधानी ग्वालियर में थी और जिन्होंने दिल्ली के मुगल सम्राट को अपनी मुट्ठी में कर रखा था। महादजी सिंधिया ने अपनी बुद्धिमत्ता और व्यवहार-कुशलता से तत्कालीन राजनीति में अपनी धाक जमा ली थी, फ्रांसीसी सेनापतियों और विशेषज्ञों को अपनी

नौकरी में रखकर उनकी सहायता से एक शक्तिशाली और आधुनिक युद्ध-प्रणाली में निपुण सेना और तोपचियों का दस्ता तैयार कर लिया था। अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को उन्होंने पहचाना और अपनी कूटनीतिज्ञता से मराठा-साम्राज्य को सम्हाले रखा और समूचे भारत को अंग्रेजों के विरुद्ध एकसूत्र में बांधने की भी कल्पना की। इस तरह महादजी सिंधिया, जिनके पिता पेशवा की निम्नतम सेवा (जूतियां पहनाने) के लिए नियुक्त थे, और जातिगत क्रम में जिनका कुल नीचा ही माना जाता था, मराठा सरदारों में अग्रगण्य और मराठा-साम्राज्य के प्रमुख स्तम्भ बन गए थे।

किन्तु इस नाटक के घटनाचक्र के समय तक महादजी सिंधिया की मृत्यु हो चुकी थी। वह सन् १७९२ के जून मास में अर्से तक उत्तर भारत में रहने के बाद पेशवा की सेवा में पूना आये थे और वही डेढ़ साल रहने के बाद फरवरी १७९४ में उनका देहावसान हो गया। यद्यपि महादजी सिंधिया की तीन पत्नियां थीं—भागीरथीबाई, लक्ष्मीबाई और यमुनाबाई, तथापि कोई औरस संतान उन्होंने नहीं छोड़ी और दौलतराव को उन्होंने गोद लिया। दौलतराव सिंधिया की अपनी दो विमाताओं लक्ष्मीबाई और यमुनाबाई से बिल्कुल नहीं बनी, यहांतक कि दौलतराव ने उन दोनों के भरण-पोषण के लिए रकम देने से आनाकानी की और आगे चलकर यह अनबन युद्ध का रूप ले बैठी।

सिंधिया के अतिरिक्त तीन और मराठे सरदार थे, जिन्हें मराठा-साम्राज्य का स्तम्भ कहा जा सकता है—इंदौर के होल्कर, नागपुर के भोंसले और बड़ौदा के गायकवाड़। किन्तु उस समय सिंधिया ही की शक्ति विशेष बढ़ी हुई थी और पेशवा पर अधिकार जमाने के लिए सिंधिया और नाना फड़नवीस में होड़ लगी थी।

सन् १७९४ में सिंधिया और नाना फड़नवीस की प्रतिस्पर्धा कुछ काल के लिए रुक गई। पूना में सभी मराठे सरदार जमा होने लगे और क्रमशः हैदराबाद के निजाम से लोहा लेने के लिए एक विशाल सेना का निर्माण हो चला। हैदराबाद के निजाम का मंत्री था मुशीर-उल-मुल्क, निपुण कूटनीतिज्ञ ! पेशवा के प्रधान मंत्री थे नाना फड़नवीस ! मुशीर-उल-मुल्क और नाना फड़नवीस की आपस में कभी न बनी और उन

दोनों के वैर के ही फलस्वरूप निजाम और मराठों की मुठभेड़ ने इतना भयंकर रूप ले लिया। निजाम को आशा थी कि इस मुठभेड़ में अंग्रेज मराठों के विरुद्ध उसका साथ देंगे। लेकिन तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर जनरल सर जान शोर ने तटस्थता की नीति अपनाई। (सरदेसाई : खण्ड ३, पृ० २८८-२९०)

निजाम के दरबार में मराठों का प्रतिनिधि था गोविन्दराव काले, जिसने बराबर यह कोशिश की कि मराठों और निजाम का मामला शांति-पूर्वक सुलझ जाय; लेकिन मुशीर-उल-मुल्क ने एक न मानी। जब चौथ के हिसाब-संबंधी कागजात पूना से हैदराबाद पहुंचे और गोविन्दराव काले ने उन्हें मुशीर-उल-मुल्क के सामने रखा तो वह बोला—“यह हिसाब मेरी समझ में नहीं आता। नाना फड़नवीस को खुद यहां आकर यह लेखा-जोखा समझाना चाहिए।” गोविन्दराव ने उत्तर दिया—“नाना बहुत व्यस्त है और यहां नहीं आ सकेगे।” मुशीर ने उद्दण्डतापूर्वक कहा—“तुम देख लेना, मैं खुद नाना को यहां जबरदस्ती ले आऊंगा।” इस तरह के वातावरण में गोविन्दराव काले के सभी शांति-प्रयास वृथा हुए और दोनों तरफ युद्ध की तैयारियां होने लगी। (वही : खण्ड ३, पृ० २९३)

पूना में सन् १७९४ की शरद् पूर्णिमा ! सभी प्रमुख मराठे सरदार पेशवा की सेवा में उपस्थित थे, शरदोत्सव पर। इस शरदोत्सव का वर्णन ग्रांट डफ ने अपने मराठा-इतिहास में किया है। हमारे नाटक का प्रारम्भ उसी शरदोत्सव की रात्रि को होता है। पूना ही में नाना फड़नवीस की सवार-टुकड़ी में सखाराम घाटगे एक साधारण पदाधिकारी था। कागल गांव का वह निवासी था। कागल की किलेदारी उससे उसके एक सम्बन्धी यशवंतराव ने छीन ली थी। गांव छोड़कर वह चला आया, लेकिन अपने अपमान को वह न भूला। पूना में नानासाहब की नौकरी करते-करते शायद उसके मन में दुर्दान्त महत्वाकांक्षा का आविर्भाव हुआ और बड़ी युक्ति और कुटिलता के साथ उसने अपनी शक्ति और प्रभाव का विस्तार किया। सखाराम घाटगे के बारे में सरदेसाई लिखते हैं कि इतिहास में उसके जैसा अन्य कोई कुटिल व्यक्ति मिलना दुस्तर है, और यह भी सच है कि मराठा-साम्राज्य के पतन में उसका बहुत बड़ा हाथ था। (सरदेसाई : खण्ड ३, पृ० ३०१)

बायजाबाई इसी सखाराम घाटगे की पुत्री थी, अनिन्द्य सुन्दरी ! अंग्रेज इतिहासकार ब्राउटन ने बायजाबाई के सौंदर्य का अत्यंत रोचक विवरण दिया है । सखाराम घाटगे अथवा शर्जेराव (इसी नाम से बाद में सखाराम प्रसिद्ध हुए) ने अपनी पुत्री के सौंदर्य को अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने का एक साधन बनाया । दौलतराव सिंधिया ने बायजाबाई को पहले-पहल कब देखा, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; सम्भवतः सन् १७९४ के उसी शरदोत्सव में उन्होंने उसे देखा और लट्टू हो गये । सौन्दर्य के अतिरिक्त एक और लालच था दौलतराव सिंधिया को । सिंधिया-कुल जातिक्रम में हीन था; शर्जेराव उच्च ब्राह्मण-कुल के थे; उनकी कन्या से विवाह होने से सिंधिया की कुलवृद्धि होती । इसलिए दौलतराव इस संबंध के लिए और भी लालायित हो गया । शर्जेराव ने दौलतराव की बेताबी देखी और अपना मार्ग स्थिर कर लिया । (सरदेसाई : खण्ड ३, पृ० ३२३)

नाटक का प्रथम दृश्य पूना में शरदोत्सव के बाद रात्रि में सखाराम उर्फ शर्जेराव घाटगे के मकान में घटित होता है । निजाम से युद्ध के लिए कटिबद्ध मराठा नेता और सरदारगण पूना के शरदोत्सव में आमंत्रित हैं । शर्जेराव की दौलतराव तक पहुंच हो गई है । बायजाबाई को दौलतराव ने देख लिया है ।

क्या बायजाबाई का कोई पूर्व प्रेमी था ? इतिहास इस बारे में मौन है, और यहीं अपनी कल्पना से मैंने नरसिहराव के चरित्र की सृष्टि की है । जो पंचतोलिया कपड़ा नागपुर में प्रदर्शित है, उसको बुनने-वाला कोई-न-कोई रहा होगा । वह व्यक्ति हैदराबाद का था या उस क्षेत्र का, जो आजकल मध्यप्रदेश कहलाता है, यह नहीं मालूम । लेकिन इतना निश्चित है कि वह व्यक्ति खर्दा-युद्ध में सिंधिया की आज्ञा से पकड़ा गया और राजद्रोह के अपराध में उसे सिंधिया ने प्राणदण्ड की आज्ञा दी । यह भी विदित है कि ग्वालियर के सरदार जिन्सेवाले के अनुरोध पर सिंधिया ने उस व्यक्ति को प्राणदण्ड से मुक्त कर, आजीवन कारागार का दण्ड दिया । ग्वालियर किले के उसी तहखाने में जहां औरंगजेब ने मुराद को बंद करके रखा था और उसका वध कराया था, इस अभाग्य बन्दी को कालयापन

करना पड़ा और वहीं इसने उस अद्भुत साड़ी को बुना, अपने अंगूठे के भीतरी नाखून में सूराख करके, उसे ढरकी (शटल) की तरह इस्तेमाल करके। पंचतोलिया साड़ी के बुनने की इस विधि का आजकल यद्यपि व्यवहार नहीं होता तथापि मुझे हैंडलूम बोर्ड की विशेषज्ञा श्रीमती पुपुल जयकर से ज्ञात हुआ है कि उस क्षेत्र के बुनकर इस विधि से परिचित अवश्य हैं। नागपुर म्यूजियम में प्रदर्शित कपड़े के नीचे उसका विवरण दिया गया है और देखा जा सकता है।

नाटक के दूसरे दृश्य में खर्दा के युद्ध से एक दिन पहले की कथा है। इस दृश्य में सरदेसाई के इतिहास में वर्णित अनेक तथ्य शामिल हैं, लेकिन उनके क्रम और कालावधि में मैंने स्वच्छन्दतापूर्वक उलटफेर कर दी है। फिर भी अधिकांश व्यक्ति और तथ्य पूर्णतः ऐतिहासिक हैं। सरदेसाई ने लिखा है (सरदेसाई : तृतीय खण्ड—पृ० २९५ से २९७ तक) कि खर्दा पूना से १५० मील पूर्व की ओर स्थित है और जब निजाम अपनी सेना लेकर बिदर से खर्दा की ओर बढ़ा तो मराठों का सैन्यदल भी उधर अग्रसर हुआ। निजाम ने अपना पड़ाव डाला खर्दा के निकट खार नदी के तट पर और मराठा फौज सिना नदी के तट पर फैल गई। इससे पहले धनोद ग्राम में मराठों ने होलिकोत्सव मनाया। उसके दूसरे दिन एक विशेष उत्सव में नाना फड़नवीस ने परशुराम भाऊ को, (जो अनुभवी और पुराने सैनिक थे) सेनापति नियुक्त किया। भाऊ ने बाबा फड़के को रसद का प्रमुख अफसर चुना। इस बीच निजाम और मराठों के छुटपुट दलों के बीच झक्की-डुक्की मुठभेड़ होने लगी थी। दोनों दलों के भेदिये और जासूस अपने-अपने विरोधी पक्ष के पूरे-पूरे समाचार ला रहे थे। मराठा सरदारों को सूचना मिली कि निजाम अपनी सेना के साथ डेढ़-सौ बेगमों के जनानखाने को भी लाये हैं, मय ८० रखैलों के जो हाथियों पर बैठकर पड़ाव पर पहुंची थीं। एक सप्ताह तक दोनों फौजें एक-दूसरे के आमने-सामने डटी रहीं। एक दिन फड़के अपने दल की एक टुकड़ी को लेकर दूर से दुश्मन के दल के मुकामों का अंदाज ले रहे थे कि एक साथ उनपर आक्रमण हुआ और उन्हें भागना पड़ा। जब निजाम के मंत्री मुशीर-उल-मुल्क के पास इस भगदड़ की सूचना पहुंची तो उसी रात उसने निजाम के दरबार में एक नाच-तमाशे

का प्रदर्शन कराया, जिसमें नाना फड़नवीस, दौलतराव सिंधिया, परशुराम भाऊ, बाबा फड़के इत्यादि की नकलें की गईं और उन्हें बीभत्स वेशभूषा में प्रदर्शित किया गया। मराठा राजदूत गोविन्दराव काले उस समय भी निजाम के राजदरबार में मौजूद थे और इस अपमानजनक प्रदर्शन को देखते ही वह दरबार से उठकर चले आये।

छुटपुट मुठभेड़ों के बाद एक दिन (शायद ११ मार्च को) निजाम के सेनापति ने अपने दल की स्थिति में कुछ परिवर्तन किया, यानी पीछेवाले दल को आगे लाने की कोशिश की और आगेवाले दल को पीछे ले गया। कुछ मराठा सेनानायकों ने इसका फायदा उठाकर धावा बोल दिया। उसी समय परशुराम भाऊ अपनी तोपों के लिए उपयुक्त स्थल मोर्चे पर ही खोज रहे थे। हठात् उनपर दुश्मन की ओर से आक्रमण हुआ। उनके माथे पर चोट पहुंची और उनका भतीजा विट्ठल, जो उनके साथ था, मारा गया। इस घटना के साथ ही युद्ध छिड़ गया। मराठा फौज निजाम के पड़ाव पर टूट पड़ी। निजाम डर गया और खर्दा के गढ़ में जाकर छिप गया। मराठों ने खर्दा के गढ़ पर जानेवाले रास्तों को रोक दिया और खाने-पीने और रसद का सामान आना बंद कर दिया। (सरदेसाई : खण्ड ३, पृ० २९७) इन रास्तों को बन्द करने में कुछ पुलों को शायद तोड़ा गया हो, यद्यपि इतिहास में पुलों के तोड़ने का अलग उल्लेख नहीं मिलता। जो हो, खर्दा के किले में आने-जाने का सामान बन्द करके मराठों ने निजाम को अपनी पराजय मानने पर विवश कर दिया।

युद्धस्थल की कहानी इतनी ही है और पहले अंक के दूसरे और तीसरे दृश्यों में इनमें से प्रमुख तथ्य आ गये हैं। एक और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख इन दोनों दृश्यों में हुआ है और द्वितीय अंक के दूसरे दृश्य में भी। सरदेसाई लिखते हैं (खण्ड ३, पृ० ३०२) कि खर्दा के युद्ध में इतनी भारी विजय प्राप्त कर लेने पर भी अन्ततः मराठों के हाथ एक छोटी-सी रकम और थोड़ा-सा भूमिखण्ड ही आ पाये। लेकिन खर्दा की सन्धि में दो ऐसी शर्तें मंजूर हुईं जिनका विशेष महत्व है और जो हाल ही तक निजाम के राज्य में लागू रहीं। पहली शर्त थी कि दखन यानी निजाम के राज्य में गोबध नहीं होना चाहिए। साथ ही महाराष्ट्र में मुसलमानों के मजहब

ताजियों, खुदापरस्ती इत्यादि पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। दूसरी शतं थी कि चूकि हिन्दू और मुसलमान एक ही परमात्मा की संतान हैं इसलिए न तो मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के मंदिरों और पूजास्थलों पर आघात होना चाहिए और न हिन्दुओं को मुसलमानों की मस्जिदों, पीर-पैगम्बरों के प्रति अनादर दर्शाना चाहिए। तदनुसार मुसलमानों को भी हिन्दुओं के पूजापाठ में विघ्न नहीं डालना चाहिए। दोनों गतावलम्बी अपनी-अपनी धर्मचर्या का पालन, बिना एक-दूसरे को छोड़े, करते रहें।

अंग्रेज इतिहासकार खर्दा की संधि की इन दो महत्वपूर्ण शर्तों के प्रति उदासीन रहे हैं और हमारे स्कूलों और कालेजों में पढ़ाये जानेवाले पाठ्य-ग्रन्थों में प्रायः इन शर्तों का उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन इतिहास इस बात का साक्षी है कि एक लम्बे असें तक निजाम के राज्य में गोवध बन्द रहा और महाराष्ट्र एवं निजाम के मराठवाड़ा क्षेत्र में हिन्दू-मुसलमानों के आपसी सम्बन्ध प्रायः मेलभाव से भरेपूरे रहे हैं। खर्दा-युद्ध के इस पहलू ने मुझे विशेषतः आकृष्ट किया और मैंने नरसिंहराव के माध्यम से इस ऐतिहासिक तथ्य की इस नाटक में परिपुष्टि करने की चेष्टा की है।

प्रथम अंक के तीसरे दृश्य में नाना फड़नवीस की अतुल धनराशि की ओर जो संकेत है उसके विषय में सरदेसाई का कथन है (खण्ड ३, पृ० ३२७) कि नाना फड़नवीस के जीवनवृत्तकार खरे के अनुसार नाना फड़नवीस ने अनेक अनुचित तरीकों से कम-से-कम नौ करोड़ की सम्पत्ति जमा कर ली थी। इसी दृश्य में दौलतराव अपनी दोनों विमाताओं यमुनाबाई और लक्ष्मीबाई को पत्र लिखता दिखाया गया है। दौलतराव ने उन्हें इस आशय के पत्र लिखे हों अथवा नहीं, लेकिन विमाताओं से उनके सम्बन्ध के विषय में सरदेसाई का कथन है (वही, पृ० ३३७) कि गोदी लिये जाने समय ही दौलतराव ने अपनी तीनों विमाताओं को उनके भरणपोषण के लिए अलग से प्रबन्ध कर देने का वायदा किया था, किन्तु महाराष्ट्र और दखन में इतनी दीर्घ अवधि तक रहे चले आने के कारण उसकी अपनी आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली गई और वह अपने वायदे को पूरा नहीं कर सका। तीनों विमाताएं समर और शासन-संबंधी विषयों में निपुण थीं। भागीरथीबाई तो दौलतराव के पक्ष में रही, लेकिन यमुनाबाई और

लक्ष्मीबाई, जो उज्जैन में निवास करती थीं, अर्थ-संकट में पड़कर दौलतराव के विरुद्ध युद्ध तक करने को तत्पर हो गईं।

वस्तुतः खर्दा के युद्ध के बाद मराठा-साम्राज्य और उसके प्रमुख नेताओं की परिस्थिति ने पलटा खाया और जिस शक्तिपुंज और राष्ट्रीय एकता की झांकी युद्ध से पहले मिली थी, वे छिन्न-भिन्न हो गये। विजय के सात-आठ महीने बाद ही किशोर वयस्क पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु हो गई। उसके बाद लगभग एक वर्ष तक पेशवा की गद्दी पर अपने-अपने पिट्ठू को बिठाने के लिए नानासाहब और सिंधिया के बीच दांव-पेंच चलते रहे। थोड़े समय के लिए चिमनाजी अप्पा को जबरदस्ती पेशवा बनाया गया, किन्तु अन्ततः दिसम्बर १७९६ में झूठ, फरेब और विश्वास-घातों के ताने-बाने के बीच नाना और सिंधिया दोनों ने मिलकर, उस समय तक तिरस्कृत, बाजीराव द्वितीय को पेशवा के पद पर अभिषिक्त किया। सिंधिया और नाना फड़नवीस की यह मेल-भगत बहुत ही थोड़े दिन चली; बाजीराव द्वितीय और सिंधिया मिल गये और साल भर बाद दिसम्बर, १७९७ में एक दिन वह आया कि महान् कूटनीतिज्ञ और प्रतापशाली नाना फड़नवीस को सिंधिया की आज्ञा से गिरफ्तार कर लिया गया। पूना में दो-तीन महीने तक सिंधिया और बाजीराव के कर्मचारियों ने अत्याचार और लूटमार का दमनचक्र चलाया। मराठा-साम्राज्य के उन कलुषपूर्ण दिनों की कथा सरदेसाई ने अपने ग्रन्थ के ग्यारहवें अध्याय में 'ईविल जीनियस एट वर्क'—इस शीर्षक के अन्तर्गत व्योरेवार प्रस्तुत की है।

• कुटिलता, कूटनीति और दांवपेंचों की यह कहानी रोचक होते हुए भी अत्यन्त जटिल और सर चकरा देनेवाली है और मैंने इसे अपने कथानक में सिमेट लेने का साहस नहीं किया है। किन्तु झूठ, फरेब और धोखा-धड़ी के तानेबाने को परखते-परखते मैंने देखा कि इस तानेबाने का असली सूत्रधार न सिंधिया था, न नाना फड़नवीस और न बाजीराव द्वितीय, बल्कि मराठा-इतिहास का अन्यतम और निराला धूर्त शर्जेराव घाटगे था। कैसा भयानक चरित्र था शर्जेराव घाटगे का, कैसे दहला देनेवाले कारनामे थे उसके ! इटली के सीजर बोर्जिया की तरह हृदयहीन, शेक्सपियर के इयागो की भांति चालबाज और निर्मम, नादिरशाह की भांति रक्तपात

और नृशंसता का प्रेमी ! यह शर्जेराव घाटगे आसुरी वृत्तियों का अवतार-स्वरूप था । इस नाटक के द्वितीय और तृतीय अंक में शर्जेराव के कुटिल व्यक्तित्व का विकास और दौलतराव सिधिया के चरित्र का ह्रास दिखाया गया है ।

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में कोई उल्लेखनीय ऐतिहासिक तथ्य नहीं है और न दूसरे दृश्य में, किन्तु शर्जेराव की दुष्टता और कुटिलता का आभास मिल जाता है । ग्वालियर के सरदार जिन्सेवाले ने विशेष अनुरोध करके ग्वालियर किले के उस अज्ञात बन्दी को मृत्युदण्ड से बचाया, इस तथ्य की ऐतिहासिकता में भी कोई सन्देह नहीं जान पड़ता ।

शर्जेराव ने किस तरह दौलतराव सिधिया को दुर्व्यसनों के पतनोन्मुखी पथ पर अग्रसर करके अपना मतलब साधा, इसका चित्र तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में अंकित किया गया है । खर्दा के युद्ध के बाद शर्जेराव नाना फड़नवीस की नौकरी छोड़कर सिधिया का कर्मचारी बन गया । सरदेसाई लिखते हैं (सरदेसाई : खण्ड ३, पृ० ३३७) कि शर्जेराव क्रमशः दौलतराव सिधिया का पक्का विश्वासपात्र बन गया और उसने दौलतराव को शराब और अफीम की लत भी लगा दी । शराब और अफीम के नशे में शर्जेराव घाटगे ने सिधिया से मनचाहे आज्ञापत्र प्राप्त कर लिये । दौलतराव, घाटगे की पुत्री बायजाबाई के सौन्दर्य पर मुग्ध तो था ही, वह इस विवाह-संबंध के द्वारा अपने कुल का स्तर भी ऊपर उठाना चाहता था । (सरदेसाई : पृ० ३२२) । पहले तो शर्जेराव घाटगे ऊपरी भाव से मना करता रहा, किन्तु फिर इस शर्त पर राजी हो गया कि सिधिया उसे अपना प्रधान मंत्री बना दे । यही हुआ । पूना में बड़ी धूमधाम से दौलतराव सिधिया और बायजाबाई का विवाह सम्पन्न हुआ और तुरन्त शर्जेराव एक साधारण नागरिक के स्थान पर सिधिया का प्रधान मंत्री बना दिया गया, यहांतक के मराठा-साम्राज्य के बड़े-से-बड़े अधिकार उसके हाथ में आ गये और कुछ समय के लिए वह पूना का एकमात्र सत्ताधारी शासक बन बैठा । नाना फड़नवीस के पूनावाले भवन में वह रहने लगा और नाना के ही दफ्तरवाले हमरे में बैठकर हुक्म चलाने लगा । (वही, पृ० ३३६) । पूना की जनता पर उन दो-तीन महीनों में उसने घोर अत्याचार किया । कुछ समय उपरांत

सिधिया की विमाताओं, यमुनाबाई और लक्ष्मीबाई, ने सिधिया से अपने भरण-पोषण-संबंधी सहायता प्राप्त करने के लिए पूना की ओर प्रयाण किया। तब शर्जेराव घाटगे ने ही बलात् उन दोनों महिलाओं को उनके कक्ष में घुसकर बाहर घसीटा और खुले आम उनपर कोड़ों की मार की (वही, पृ० ३३८)।

तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख हुआ है और दौलतराव सिधिया और शर्जेराव घाटगे के चरित्रों का इतिहास के अनुसार ही विकास किया गया है।

यद्यपि मैंने इस लेख में नाटक में किये गए ऐतिहासिक उल्लेखों के आधारों की पुष्टि की है और तत्कालीन राजनैतिक वातावरण को नाटक की पृष्ठभूमि के रूप में दिखाया है, तथापि मूलतः नाटक की प्रेरणा मुझे उस अज्ञात बन्दी की कल्पनातीत अनुभूतियों से ही मिली है, जिसने ग्वालियर किले की काल कोठरी में उस महीन साड़ी के रूप में दिव्य सौंदर्य का सृजन किया। कौन जाने भावनाओं के किस तूफान को उसने अपने अंतस्तल में बांधकर अपने हाथों में एक अपूर्व कला-शक्ति का संचार पाया ?

मैंने ग्वालियर किले का वह तहखाना देखा है। उस तहखाने में बन्द सौंदर्य के निर्माता बन्दी की काल्पनिक मूर्ति के आगे मुझे ऐतिहासिक सत्य की खोज निरर्थक जान पड़ी।

इस पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर अंकित चित्र में ग्वालियर-निवासी सुप्रसिद्ध कलाकार श्री प्रभात नियोगी ने उस किले के तहखाने के वातावरण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

दृश्य-सूची

प्रथम अंक

- दृश्य एक : समय : सन् १७९४ की शरद् पूर्णिमा ।
 एक पहर रात ढल चुकी है ।
 स्थान : पूना में शर्जेराव घाटगे का मकान ।
- दृश्य दो : समय : सन् १७९५ की १० मार्च की संध्या ।
 स्थान : खर्दा के युद्ध-स्थल में मराठा-शिविर का एक खेमा ।
- दृश्य तीन : समय : दूसरे दिन की संध्या ।
 स्थान : वही ।

द्वितीय अंक

- दृश्य एक : समय : खर्दा-युद्ध के लगभग एक मास उपरान्त ।
 संध्या ।
 स्थान : पूना में शर्जेराव का मकान ।
- दृश्य दो : समय : पांच-छः महीने बाद ।
 स्थान : ग्वालियर के किले का तहखाना ।

तृतीय अंक

- दृश्य एक : समय : दो वर्ष बाद ।
 स्थान : पूना में शर्जेराव का मकान ।
 पहले से अधिक सुसज्जित ।
- दृश्य दो : समय : दो महीने बाद ।
 स्थान : ग्वालियर के किले का तहखाना ।



पात्र-परिचय

बायजाबाई	:	शर्जेराव घाटगे की पुत्री ।
नरसिंहराव	:	बायजाबाई का प्रेमी ।
सरनाबाई	:	बायजाबाई की परिचारिका ।
शर्जेराव उर्फ	:	कागल गांव का किलेदार । बाद में
सखाराम घाटगे	:	नाना फड़नवीस और दौलतराव
		सिंधिया का कर्मचारी ।
परशुराम भाऊ	:	खर्दा-युद्ध में मराठा-दल का सेनापति
बाबा फड़के	:	मराठा-दल की रसद-सामग्री का
		प्रधान । (क्वार्टर मास्टर जनरल)
दौलतराव सिंधिया	:	महादजी सिंधिया का दत्तक पुत्र,
		ग्वालियर राज्य का नरेश और
		मराठा-साम्राज्य के अग्रगण्य
		नेताओं में एक ।
जिन्सेवाले	:	ग्वालियर का कुलीन सरदार ।
		नरसिंहराव का मित्र ।
बरबान		सिंधिया का कर्मचारी ।
पत्र-लेखक		सिंधिया का कर्मचारी ।
सैनिक (चार)	:	शर्जेराव के अनुचर ।
रहीमन	:	गायिका और नर्तकी । शर्जेराव द्वारा
		अपनी पुत्री की संगीत-शिक्षा एवं
		सिंधिया के मनोरंजन के लिए
		नियुक्त ।
गढ़पति	:	ग्वालियर के किले और कारागार का
		अधिपति । सिंधिया का कर्मचारी ।

शारदीया

प्रथम अंक

दृश्य एक

[सन् १७९४ की शरद् पूर्णिमा । पूना में शर्जेराव घाटगे का मकान । कमरा साफ-सुथरा, लेकिन कोई विशेष सज्जित नहीं है । दीवार में आले, पुराने ढंग की चौकियां और मूढ़े । बायजाबाई बैठी हुई मराठी गीत गुनगुना रही हैं और घर की वस्तुएं इधर-उधर रख रही हैं]

[थोड़ी देर बाद दरवाजे पर दस्तक की आवाज]

बायजाबाई : कौन है ? पिताजी घर में नहीं हैं ।

(पुनः दस्तक)

बायजा० : (दरवाजा खोलते हुए झुंझलाहट) सुना नहीं ?

मैंने कहा.....

नरसिंहराव : एक दिन था कि मेरे कदमों की आवाज तुम पहचान लेती थीं ।

बायजा० : (आह्लादभरे स्वर में, साश्चर्य) नरसिंह !

नरसिंह : बायजाबाई !

बायजा० : (सलज्ज) उन दिनों तुम्हारे कदम हलके और छोटे थे ।

नरसिंह : इतना बदल गया हूं !

बायजा० : बैठो । दो बरस कम समय नहीं है ।

- नरसिंह : दो वर्ष में चंचल तितली मधुरिमाभरी मयूरी बन गई है, यह आज मैंने देखा ।
- बायजा० : मुगल-दरबार की-सी मीठी बोली कहां सीखी ?
- नरसिंह : झरना किसीके सिखाने से फूट पड़ता है क्या?
- पर हां, मुगलों का दरबार देख चुका हूं, हैदराबाद में ।
- बायजा० : निजामशाही में रह आये हो । (रुककर) बेगमें पसंद आई ?
- नरसिंह : हैदराबाद की बेगमें भी देखीं और मुम्बई में फिर-गियों की मेमें भी ।
- बायजा० : हूं । (व्यंग्य) तो दो बरस अच्छे कटे ।
- नरसिंह : आज उषा की एक उज्ज्वल किरण दो पल को चमकी और तब मालूम हुआ कि वे दो बरस तो नींद में गुजरे थे ।
- बायजा० : ओहो ! पर उषा की रेखा सपनों की परियों का मुकाबिला क्या करेगी ?
- नरसिंह : (भीगे स्वर में) बायजाबाई, आज उत्सव में तुम्हें देखा तो लगा मानों परियां अपनी रानी को धरती पर छोड़कर उड़ गईं ।
- बायजा० : (हँसी) झूठे ! (रुककर) पूना में कहां ठहरे हो ?
- नरसिंह : सरदार जिन्सेवाले के यहां ।
- बायजा० : नाम से ग्वालियर के जान पड़ते हैं ।
- नरसिंह : हां, ग्वालियर के ही हैं । सिन्धिया महाराज के खास आदमी हैं । मुझे अपना मित्र मानते हैं और बड़े कृपालु हैं ।
- बायजा० : बड़े आदमियों से मित्रता हो गई है । कागल की याद

तो क्या आती होगी ?

नरसिंह : बायजाबाई, मैं कागल गया था। कागल, हम लोगों की जन्मभूमि ! कागल हम लोगों की पुण्यस्थली !
(निःश्वास) लेकिन देखा कि न वह कागल है और न तुम ।

बायजा० : (उदास) तुमने सब सुना होगा ।

नरसिंह : सबकुछ सुना और देखा । तुम्हारे पिताजी के गढ़ पर यशवंतराव जमे हुए हैं ! ... उलटे पांव लौट आया ।

बायजा० : बाबा कहते हैं जबतक कागल को फिर से न पा लूंगा तबतक सखाराम नाम नहीं । नानासाहब के यहां नौकरी पहले भी कर चुके थे । सौ सवारों की सरदारी मिली है ।

नरसिंह : और तुम ? कागल की याद तुम्हें नहीं आई ?

बायजा० : (निःश्वास) नरसिंह, अगर मां रहती और तुम न आते तो मैं बाबा के पांव पड़ती और कहती कि कागल मत छोड़ो । न सही किलेदारी लेकिन अपना गांव न छोड़ो, पर ... पर नरसिंह, मां (आविष्ट स्वर) तो गईं । और ... और तुम ... न जाने क्यों ... बिना बताये ... तुम गायब हो गये । ... नरसिंह क्यों चले गये तुम ?

नरसिंह : मैं क्यों गया ? ... बायजाबाई, आज अगर तुम्हारी मां होतीं तो उनसे इस प्रश्न का उत्तर दिलवाता ।

बायजा० : मां जानती थीं ? ... पर उन्होंने तो कभी किसी-को बताया ही नहीं ।

नरसिंह : क्योंकि मेरा और उनका एक बायदा था ।

- बायजा०** : वायदा ?
- नरसिंह** : मुझसे बोलों—नरसिंह, तू किलेदार की लड़की से ब्याह करना चाहता है तो कुछ घर की पूंजी भी तो तैयार कर । मैंने कहा वह मैं कर लूंगा, तो बोलों, जब वह कर लेगा तो बायजाबाई भी तेरी हो जायगी । ... दूसरे दिन मैं चुपचाप घर से चल दिया ।
- बायजा०** : मुझसे दामन छुड़ाने ?
- नरसिंह** : अगर कहूं कि दामन जोड़ने ?
- बायजा०** : उसका सबूत ?
- नरसिंह** : यह देखो । (गठरी में से एक बारीक साड़ी निकालकर दिखाता है ।)
- बायजा०** : इतनी बारीक साड़ी ! (हाथ से छूती हुई) ओह, कितनी हल्की है यह ! ... कौन हैं वे जादूगर, जिन्होंने इसे बुना है ।
- नरसिंह** : मेरे दोस्त और गुरु ।
- बायजा०** : तुम्हारे दोस्त ? तुम्हारे गुरु ?
- नरसिंह** : हां, निजामशाही के एक गांव में दो-चार पुराने कारीगर हैं । दो बरस तक बराबर मैंने उनकी खिदमत की है । उनकी बनाई हुई लाजवाब चीजें मैं मुम्बई ले जाकर फिरंगी मेमों को बेचने लगा । मुंहमांगे दाम मिलने लगे । (मुस्कराकर) देखती हो न, कितना मोटा हो गया हूं ।
- बायजा०** : (हँसती हुई) यानी परियों का शहजादा सौदागर बन गया ।

- नरसिंह : सौदागर ही नहीं कारीगर भी । . . . उन लोगों ने अपना हुनर भी थोड़ा-बहुत मुझे सिखा दिया है ।
- बायजा० : तुम भी इतना बारीक कपड़ा बुन सकते हो ?
- नरसिंह : हां, लेकिन वे कारीगर तो इससे भी ज्यादा बारीक बुन सकते हैं ।
- बायजा० : इससे भी ज्यादा बारीक ? यकीन नहीं होता ।
- नरसिंह : पहले मुझे भी यकीन नहीं होता था । लेकिन मैंने उन्हें काम करते देखा है और उनका रहस्य मैंने पा लिया है ।
- बायजा० : उनके करघे ही निराले होंगे ।
- नरसिंह : नहीं । बात यह है कि कारीगर अपने अंगूठे को ढरकी की तरह इस्तेमाल करता है । धागा उसीमें पिरोया जाता है ।
- बायजा० : अंगूठे में धागा पिरोया जाता है ?
- नरसिंह : हां, कारीगर अपने अंगूठे में सूराख कर लेता है ।
- बायजा० : अंगूठे में सूराख ! . . .
- नरसिंह : . . . और तब जो साड़ी बुनी जाती है उसका वजन होता है पांच तोला । उसे कहते हैं पंचतोलिया ।
- बायजा० : पांच तोले ? देखू तो ।
- नरसिंह : अभी नहीं ।
- बायजा० : अभी नहीं ?
- नरसिंह : हां, अभी नहीं । . . . बायजाबाई उसके लिए . . . उसके लिए . . . एक खास तिथि नियत करनी होगी ।
- बायजा० : (कोमल शर्माया स्वर) नरसिंह !

- नरसिंह : आज तुम्हारी मां होती तो तिथि निश्चित करते देरी न लगती ।
- बायजा० : (कुछ रुककर) नरसिंह, बाबा से बात करोगे न ?
- नरसिंह : सोचा तो यही था...लेकिन मुझे फौरन जाना है ।... और फिर...अब उतनी जल्दी नहीं है ।
- बायजा० : (उदास) दो बरस बीत गये ... और ... जल्दी नहीं है !
- नरसिंह : बायजाबाई जबतक मैं लौटता नहीं हूं तबतक यह बात रुकनी ही होगी ।
- बायजा० : (निःश्वास) सौदागर फिर अपने काफिले को लौट चला ।
- नरसिंह : बायजाबाई, यह दूसरा काफिला है । एक पूंजी इकट्ठी कर ली । अब दूसरी पूंजी जमा करनी है, वह जो किसी भी मराठे का आभूषण है । मेरी तलवार को रक्त का शृंगार चाहिए ।
- बायजा० : (पीड़ित स्वर) नरसिंह, मैं मुस्कराऊं या आंसू गिराऊं ?
- नरसिंह : मुस्काओ, बायजाबाई । ... आज सभी मराठा रमणियों के मुस्कराने का अवसर है । श्रीमंत पेशवा के झंडे के नीचे आज बहुत दिनों बाद सभी मराठे-प्रमुख एकत्र हुए हैं । निजाम को अपने दुराग्रह का फल भोगना पड़ेगा ।
- बायजा० : क्या युद्ध इतना शीघ्र होगा कि तुम्हें अभी जाने की जरूरत पड़ गई ?
- नरसिंह : युद्ध की तैयारी में कुछ समय लगेगा ।

- बायजा० : तो अभी से तुम कहां जा रहे हो ?
- नरसिंह : निजाम की तैयारियों का पता लगाने ।
- बायजा० : नरसिंह, (आशंकापूर्ण स्वर) नरसिंह, यह तो बड़े जोखिम का काम है ।
- नरसिंह : जोखिम से मैं डरा कब हूं ? और फिर सिन्धिया के दल में और कोई नहीं जो इस काम को कर सके । मैं निजामशाही के कोने-कोने को जानता हूं । मराठा-राजदूत गोविंदराव काले की सेवा में रहा हूं ।
- बायजा० : युद्ध-क्षेत्र में जाने से पहले एक बार मिलोगे ?
- नरसिंह : नहीं, पूना नहीं लौटूंगा । युद्ध-क्षेत्र में ही अपने दल में शामिल होऊंगा । इसलिए ... (रुककर) बायजाबाई, तुमसे विदा लेने आया हूं ।
- बायजा० : (निःश्वास) दो बरस हुए कागल छोड़ने से पहले भी शरद् पूर्णिमा को ही तुम आये थे ... लेकिन तब तुमने यह न बताया था कि तुम जा रहे हो ।
- नरसिंह : शरद् पूर्णिमा की विदा वियोग के लम्बे पथ पर चांदी बिखेर देती है ।
- बायजा० : मेरे लिए तो अंगारे ही रहते हैं, नरसिंह । कागल में शरद् की वे चांदनी रातें ... कब हमें वापस मिलेंगी, नरसिंह ?
- नरसिंह : नहीं जानता । ... लेकिन चाहे मैं तुम्हारे निकट होता हूं, चाहे तुमसे दूर, शरद् की पूर्णिमा की तरह तुम मेरे मानस में छायी रहती हो । निर्मल, शीतल ... मन के कोने-कोने को भासमान करती रहती हो । (मर्मस्पर्शी स्वर) गहरे अंधकार में मैंने

- मुस्काती चांदनी का अनुभव किया है। बायजाबाई,
 तुम्हीं तो मेरी चांदनी हो, मेरी शारदीया।
- बायजा० : (रुंधे गले से) तुम मुझे रुलाकर छोड़ोगे, नरसिंह ?
- नरसिंह : (कोमल स्वर) शारदीया रोती नहीं ... अपनी
 धवल मुस्कान के साथ मुझे विदा करो। इसीने मेरा
 साथ दिया है। यही मेरा साथ देगी।
- बायजा० : (कुछ रुककर, रुद्ध स्वर में) नरसिंह ! अपनी
 कटार देना ... (कटार लेती है)
- नरसिंह : यह क्या कर रही हो ?
 [बायजाबाई बांयी उंगली में कटार से घाव करती
 है, रक्त निकल पड़ता है।]
- बायजा० : रक्त का टीका। ... मस्तक आगे करो, नरसिंह।
 (टीका लगाते हुए) विजयलक्ष्मी तुम्हारी सहायता
 करे ... और मेरी भी।
- नरसिंह : (आविष्ट) तुम्हारी उंगली के इस नन्हे घाव को
 कभी न भूलूंगा, बायजाबाई। (जाते हुए) अपने
 पिताजी से कह देना, नरसिंह ने मां का वायदा पूरा
 कर दिया। अब उनके ऊपर है।
- बायजा० : नरसिंह। ...
- नरसिंह : शारदीया ! (प्रस्थान, बाहर से) शारदीया ! ...
 [घोड़े पर चढ़ने और जाने की आवाज। बायजाबाई
 ठगी-सी खड़ी रह जाती है।]
- मध्यवयस्का परिचारिका सरनाबाई का
 घर के अंदर से प्रवेश।]
- सरना० : लाओ बायजाबाई, पट्टी बांध दूँ। (पट्टी बांधती है)

- बायजा०** : यह घाव हरा ही रहने दे, सरनाबाई ।
- सरना०** : बचपना न करो, छोटी मालकिन ।
- बायजा०** : मेरा बचपन मुझे वापस दिला दे, सरनाबाई ! बहुत गुन मानूंगी ।
- सरना०** : बचपन कई तरह के होते हैं, बाई । (कटी अंगुली पर पट्टी बांधते हुए) एक तो वह जिसमें हर दिन नया होता है—हर घड़ी ताज़ी ! यही होता है मां की गोदी का बचपन ! और—
- बायजा०** : वही तो मांगती हूं मैं !
- सरना०** : और एक बचपन होता है वह जिसमें हर छिन टाले नहीं टलता, हर घड़ी काटे नहीं कटती । यह होता है बुढ़ापे का बचपन, बुढ़ापे की नासमझी..... जब चिता की गोदी भी देर से मिलती है ।
- बायजा०** : नासमझी कैसी भी हो, उसमें रह-रहकर कसक तो नहीं उठती ।
- सरना०** : नहीं बाई, तीसरे ढंग का भी बचपन होता है, नई जवानी और उगते प्रेम के अंकुर का बचपन—जब हर छिन को पकड़कर रख छोड़ने को तबीयत चाहती है, हर घड़ी को बरजोरी मूरत बनाकर अपने पास बसा लेने को मन चाहता है, चाहे कांटे चुभोये, चाहे फूल बिखरे ! यह भी तो नासमझी ही है, छोटी मालकिन !
- बायजा०** : बड़ी दुःखदायी है यह नासमझी ।..... कोई तदबीर बता, मेरी अच्छी सरनाबाई !
- सरना०** : सरकार आते ही होंगे, बाई ।

- बायजा० : बाबा से तू कह दे, सरनाबाई !
- सरना० : कह तो देती, पर मालिक का विश्वास मेरे ऊपर से उठ गया जान पड़ता है ।
- बायजा० : तेरा भ्रम है, सरनाबाई । मां के समय से तू हमारे साथ रह रही है ।
- सरना० : वही तो ! एक वे थे सखाराम घाटगे बड़ी मालकिन के प्यार में पगे और एक ये हैं शर्जेराव घाटगे, जिन्हें बेटी का प्यार भी बांध नहीं पाता—
- बायजा० : क्या कह रही है, सरनाबाई तू ?
- सरना० : तुम्हारे बापू ने कोई और डगर पकड़ ली है और न पीछे निगाह डालते हैं, न नीचे ! प्यार के फूलों में ठोकर लगेगी ही ।
- बायजा० : (झिड़कते हुए) चुप हो, सरनाबाई । मैं तेरी बात झुठलाऊंगी । लज्जा त्यागकर मैं स्वयं कहूंगी बाबा से मन की बात, और मना लूंगी उन्हें—निश्चय ही—निश्चय ही—
[बाहर किसीके आने की आहट]
- सरना० : मालिक आ पहुंचे ।
- बायजा० : तू जा, सरनाबाई । (साड़ी उठाकर बेती हुई) इसे संभालकर रख ले । (सरनाबाई का अंदर की ओर प्रस्थान)
[शर्जेराव घाटगे का प्रवेश]
- शर्जेराव : बेटी, मुझे देर तो हो गई, लेकिन तेरे लिए एक खुश-खबरी लाया हूं... (किंचित् हंसकर) एक क्यों, दो-दो ।

- बायजा० : हाथ-मुंह नहीं धोइयेगा ? ...आप थके होंगे ।
- शर्जेराव : सुन तो । ...पहली खुशखबरी यह है कि कागल की किलेदारी मिलने का रास्ता नजर आ रहा है ।
- बायजा० : कागल ? ...सच ? क्या यशवंतराव पर चढ़ाई करोगे ?
- शर्जेराव : उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी । ... आज सिन्धिया महाराज तक मेरी पहुंच हो गई है । बात यह है ... अरे, यह तेरी अंगुली को क्या हुआ ?
- बायजा० : जी, कुछ नहीं, बाबा । जरा खरींच लग गई है ।
- शर्जेराव : (संदेहपूर्ण) बायजा, यहां कोई आया था क्या ?
- बायजा० : (सलज्ज) जी हां ... । नरसिंह ।
- शर्जेराव : नरसिंह ?
- बायजा० : जी, कागल का नरसिंहराव ।
- शर्जेराव : (निश्चिन्त) ओ, नरसिंहराव उसको तो देखे वर्षों बीत गये । लेकिन हां, किसीने उसका जिक्र किया था । आज ही तो ... हां ... आ ... सरदार जिन्सेवाले ही तो कह रहे थे कि नरसिंहराव बड़ा योग्य व्यक्ति है ।
- बायजा० : जी, इसी बीच में उन्होंने व्यापार में खासी पूंजी जमा कर ली है ।
- शर्जेराव : व्यापार ? लेकिन जिन्सेवाले तो कह रहे थे कि नरसिंह राज्य के काम-काज में निपुण है ।
- बायजा० : हां, निजाम के दरबार में गोविंदराव काले के साथ आ-जा चुके हैं ।

- शर्जेराव : ऐसा ! दो वर्ष में उसमें बहुत परिवर्तन हो गया ।
- बायजा० : पहचान में ही मुश्किल से आये ।
- शर्जेराव : सजीला जवान तो पहले ही था ।
- बायजा० : जी (स्वर में माधुर्य), अब और भी ज्यादा ।
- शर्जेराव : कागल गया था क्या ?
- बायजा० : वहां की बातें कर रहे थे । पुरानी बातें...मां की बातें ।
- शर्जेराव : (स्मृतिसूचक स्वर) तुम्हारी मां ?
- बायजा० : बाबा, मां भी नरसिंह राव की अक्सर बातें करती थीं ।
- शर्जेराव : (उसी स्वर में) हां, जिक्र तो किया करती थी ।
- बायजा० : बाबा...मां...ने नरसिंह...से...मां ने बाबा... नरसिंह से...उन्होंने
- शर्जेराव : तेरी बात समझ में नहीं आई बेटी ।
- बायजा० : बाबा ! नरसिंह से मां ने वायदा किया था (हठात्) बाबा ! नरसिंह और मैं...।
- शर्जेराव : (सहसा आशय समझकर) क्या ? बायजाबाई, कहां तुम और कहां वह दो टुकड़ों का मोहताज ।
- बायजा० : अब मोहताज नहीं है, बाबा ! उसके पास पूंजी है ।
- शर्जेराव : (सावेश) पूंजी ? मेरी इकलौती बेटी की शादी और नरसिंहराव से ? असम्भव ? बायजाबाई, तू नहीं जानती कि नरसिंहराव जैसे तो तेरे यहां दास रहेंगे ।
- बायजा० : (मन्द किन्तु दृढ़ स्वर में) जिसके चरणों की दासी मुझे होना है वह...

शर्जेराव : (गरजकर) खबरदार।...देखता हूं, बात यहां-तक बढ़ चुकी है। बायजाबाई, अच्छी तरह सुन ले। तेरे लिए वर में चुनूंगा।

बायजा० : बाबा !

शर्जेराव : वर ऐसा जिसके यहां तू रानी बनकर रह सके और...

बायजा० : रानी ! नहीं-नहीं—

शर्जेराव : और जिसके बल पर मैं अपने अपमान का बदला ले सकूं।

बायजा० : (रुंधे कंठ से) कौन-सा अपमान ?

शर्जेराव : मुझे कागल वापस छीनना है। जहां मुझे पहली ठोकर मिली। कागल, जो मेरी कीर्ति-पताका का स्तम्भ होगा।

बायजा० : (सिसकते हुए) कागल मेरे अरमानों की समाधि ! कागल मां के वायदे का ...

शर्जेराव : (तेजी से) किसका वायदा ? कैसा वायदा ? मैं नहीं जानता, तेरी मां ने क्या वायदा किया था ! मैं इतना जानता हूं कि तुझे मेरी आज्ञा माननी है, माननी होगी। नादान लड़की ! तेरे पिता की महत्वाकांक्षा कागल पर ही नहीं रुकेगी। उस महत्वाकांक्षा के यज्ञ को पूरा करने के लिए अगर तेरी आहुति की जरूरत हो तो भी मैं नहीं झिझकूंगा।

बायजा० : मेरी आहुति ! ...मैं मरने के लिए तैयार हूं, बाबा।

शर्जेराव : मरण की आहुति नहीं, तेरे जीवन की आहुति !

बायजा० : मुझे मरण का आदेश दो, बाबा, लेकिन नरसिंह को...

शर्जेराव : (गरजकर) चुप हो। आज से नरसिंह तेरा कोई नहीं है। कहां गया है वह ?

बायजा० : नहीं जानती, लेकिन (सिसकते हुए) युद्ध से पहले लौटेंगे नहीं।... इस उंगली के रक्त से मैंने उनका टीका किया है।

शर्जेराव : रक्त का टीका ! वही टीका उसका काल बनेगा।

[सरोष प्रस्थान]

बायजा० : बाबा।... (रुदन) सरनाबाई, सरनाबाई, तू ठीक ही कहती थी। (सरनाबाई दौड़कर आती है और बायजाबाई को सम्भालती है।) तू ठीक ही कहती थी, सरनाबाई। (सिसकते हुए अपना चेहरा ढंक लेती है। सरनाबाई सहारा देकर ले जाती है।)

दृश्य दो

[खर्दा के निकट सिना नदी के किनारे मराठों के शिविर का एक तम्बू ।

परशुराम भाऊ, बाबा फड़के, दौलतराव सिंधिया, के साथ जिन्सेवाले]

भाऊ : लेकिन बाबा फड़के, तुम सैनिकों की इतनी छोटी टुकड़ी के साथ क्यों गये ?

फड़के : भाऊसाहब, मैंने सोचा अगले नाले तक रसद जा ही रही है । मैं दुश्मन का रुख भी देख लूं ।

भाऊ : रसद का आला अफसर खुद रसद पहुंचाने जाय— इसकी जरूरत ?

जिन्से० : और फिर मैंने तो आपको बता ही दिया था कि मेरा भेदिया उसी दिशा में दुश्मनों के कई जत्थों को देख आया था ।

फड़के : जानता हूं, सरदार जिन्सेवाले ।

सिन्धिया : तब ? तब क्यों तुम उधर गये ?

फड़के : सैनिकों का साहस अपने नायकों को निकट पाकर ही बढ़ता है, सिंधिया महाराज !

भाऊ : और दुश्मनों ने जो तुमपर चोट की उससे क्या साहस बढ़ा ? तुम्हें उल्टे पांव लौटना पड़ा । क्या चोट खाकर तुम्हारे लौट आने की बात निजाम तक

न पहुंची होगी ?

जिन्से० : पहुंची है, भाऊसाहब ।

सिंधिया : सरदार जिन्सेवाले, क्या तुम्हारा भेदिया वापस आ गया ?

जिन्से० : श्रीमन् ! उसीने बताया है कि निजाम को आज सवेरे की घटना की खबर लग चुकी है ।

भाऊ : और भी कुछ बताया ?

जिन्से० : जी हां, कहता था—

सिंधिया : सरदार, अपने भेदिये को अंदर बुला लो । जरा सुनें तो निजामअली कितने पानी में है ।

जिन्से० : जो आज्ञा ।

[प्रस्थान]

भाऊ : निजाम पर गहरा वार करना ही होगा । मैं सोच रहा था, अभी समय नहीं आया है ।

फड़के : बदला लूंगा, भाऊसाहब । मैं बदला लूंगा ।

सिंधिया : भाऊसाहब, हमारे तोपचियों का रिसाला अकेला काफी होगा ।

भाऊ : जी, श्रीमन् ! लेकिन मुशीर-उल-मुल्क को हाथ बंधे श्रीमन्न पेजवा की उपस्थिति में लाने के लिए मुगलों की छावनी को सब तरफ से घेर सकते तो अच्छा होता ।

फड़के : आज सवेरे की घटना ने वह दिन निकट ला दिया है, आलीजाह । सियार ने शेर की पूछ में दांत लगाने की हिम्मत की है ।

[जिन्सेवाले और नरसिंहराव का प्रवेश]

जिन्से० : और वह खुशी से नाच रहा है, बाबा फड़के !

सिंधिया : यही है तुम्हारा भेदिया, सरदार ?

जिन्से० : जी, आलीजाह ! नरसिहराव, बताओ निजाम अली के क्या मन्सूबे हैं ।

नरसिंह : निजाम की छावनी में जश्न मनाया जा रहा है, आलीजाह । कहा जा रहा है कि बाबा फड़के पीठ दिखाकर भाग गये ।

फड़के : पीठ दिखाकर ? झूठ !

भाऊ : तुम्हीं तो कह रहे थे—उसने तुम्हारी पूँछ पर दांत लगाया है । पूँछ तो पीठ के नीचे ही होती है ना ?

[हँसी]

सिंधिया : तो क्या दांत लगाने के बाद कुछ और पैतरे दिखायेगा निजाम ?

नरसिंह : पैतरे होंगे—आज रात ही को, लेकिन—

भाऊ : तुम्हारा मतलब आज रात ही को हमले की तैयारी है ?

नरसिंह : जी नहीं, हमला नहीं, नाच के पैतरे !

सिंधिया : नाच ? तो निजामअली की छावनी में सब तरह का इंतजाम है ।

नरसिंह : जी हां, फौज के साथ बेगमों का रिसाला भी है ।

सिंधिया : बुरका पलटन । बहुत खूब !

नरसिंह : डेढ़सौ बेगमें हैं, आलीजाह, और अस्सी रखैल । एक एक हाथी पर दो-दो की सवारी के लिए खास पर्दे-दार हौदे लगाये गए हैं । बड़ा इंतजाम है ।

भाऊ : आज रात के नाच की बात कह रहे थे, नरसिहराव ?

- नरसिंह** : जी भाऊसाहब ! हथियारों की मार से अधिक चुभन होगी इस नाच में ।
- जिन्से०** : साफ-साफ बता दो ना, नरसिंहराव ।
- नरसिंह** : निजाम ने हुक्म दिया है कि आज रात को जश्न न एक 'तमाशा' भी दिखाया जाय, जिसमें नक्काल और भांड नकल उतारेंगे ।
- फड़के** : किसकी ?
- नरसिंह** : आपकी, बाबा फड़के ! और भाऊसाहब की, नाना-साहब की, आलीजाह सिंधिया की ।
- सिंधिया** : और बेगमें और बांदियां खिलखिलाकर हँसेंगी । आज जब चुटकी भर में मेरी तोपें उन्हें और उनके निजाम की सारी फौज को चटनी बना सकती हैं ।
- फड़के** : नरसिंहराव, कहां हैं ये नक्काल और भांड ? आज रात से पहले ही इनका सफाया हो जाना चाहिए । न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी ।
- नरसिंह** : उनका कोई कसूर नहीं है, बाबासाहब । मैं उन्हें जानता हूं, उनसे बहुत-कुछ सीखा है मैंने । वे बेचारे कलाकार मेहनत करते हैं, दुनिया का मनोविनोद करते हैं, अपने हुनर को जिन्दा रखते हैं ।
- फड़के** : लेकिन हैं तो आखिर मुसलमान—म्लेच्छ !
- नरसिंह** : यह क्या कह रहे हैं, बाबा फड़के ? क्या मराठों का युद्ध मुसलमानों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए हो रहा है ? हमारी ही फौज में कितने ही तोपची, कितने ही रिसालेदार मुसलमान हैं, जिनकी ईमान-

दारी और हिम्मत पर हमें गौरव है। मराठा राज में हर जगह सैकड़ों मुसलमान घराने चैन की जिंदगी बिता रहे हैं। हमारा यह युद्ध तो—

सिंधिया : सरदार जिन्सेवाले, तुम्हारा भेदिया तो ज्ञानी संतों की-सी बातें करता है !

नरसिंह : गुस्ताखी माफ हो, आलीजाह !

जिन्से० : आलीजाह, नरसिंहराव मामूली भेदिया नहीं है। कलावंत है। निजाम के दरबार में हमारे राजदूत गोविन्दराव काले का खास आदमी है।

भाऊ : गोविन्दराव काले क्या कहते हैं आज के जश्न के बारे में ?

नरसिंह : आज के जश्न में तो वह जायंगे ही, लेकिन उनको इस नकल की खबर मैं अभी दे नहीं पाया।

फड़के : गोविन्दराव काले क्या कहेंगे ? मराठा नेताओं का मखौल उड़ाया जाय—इस बात से क्या गोविन्दराव के कानों पर जूं भी रेंगेगी ? भरे दरबार में मुशीर-उल-मुल्क ने नानासाहब की बेइज्जती की, लेकिन गोविन्दराव उस अपमान का भी धूँट पीकर रह गये।

सिंधिया : क्या गोविन्दराव को अब भी सुल्ह की उम्मीद है जो आज तक निजाम के दरबार में हाजिरी बजा रहे हैं ?

जिन्से० : आलीजाह, जब तक युद्ध का ऐलान नहीं हो जाता तब तक तो राजदूत को दूसरे दरबार की टोह लेते रहना ही है, सुल्ह की कोशिशें जारी ही रखनी हैं।

फड़के : सरदार, क्या मिलेगा इन कोशिशों से ? मृग-मरीचिका ! सच कहता हूं, गोविन्दराव किसी सपने की दुनिया में रहते हैं। आंखें बंद करके सोचते हैं—हिन्दू और मुसलमान मिल जायं, निजाम और मराठे एक हो जायं। आंखें उनकी बंद हैं और उधर मुशोर-उल-मुल्क और निजाम चारों ओर खाईं खोदते जा रहे हैं। ...भाऊसाहब, आप सेनापति हैं—तुरही बजाने की आज्ञा दीजिये।

भाऊ : बाबा फड़के ! ...तुरही बजेगी अवश्य, लेकिन अवसर की आड़ चाहिए, अवसर की आड़।

सिंधिया : हमारे तोपचियों को हुकुम दो, भाऊसाहब ! सब साफ कर देंगे।

भाऊ : आलीजाह, युद्ध के मैदान में बारूद की कीमत सोने के बराबर है। श्रीमानों के जन्म-दिवस पर उन्हें तुला पर सुवर्ण के मुकाबिले तौला जाता है। तोपों का युद्ध भी एक तुला है, आलीजाह। एक तरफ बारूद तो दूसरे पलड़े पर निशाने के लिए दुश्मन ! योंही बारूद बिखेरना बुद्धिमानी न होगी।

नरसिंह : कल सवेरे उस तौल का मौका आ रहा है, भाऊसाहब।

फड़के : यह सुनाई है तुमने पते की बात, नरसिंहराव। जल्दी बताओ, जो कल करना है उसे आज ही न कर डालें।

भाऊ : उतावले न बनो, बाबा फड़के। ... नरसिंहराव, ठीक से बताओ। कल कैसे मौका मिलेगा ? तुमने

अभी कहा कि आज रात को तो जश्न है ।

नरसिंह : उनका जश्न हमारे लिए सुनहरा मौका है ।

भाऊ : निजाम का सिपहसालार इतना बेखबर नहीं है ।
सामने के मोर्चे पर दस्ते तैनात खड़े हैं ।

नरसिंह : सामनेवाले दस्ते कल सवेरे ही पीछे के मोर्चे पर
जायंगे और पीछेवाले दस्ते सामने लाये जा रहे हैं ।
सिपहसालार ने हुक्म दे दिया है ।

भाऊ : क्यों ?

नरसिंह : शायद इसलिए कि पिछलेवाले दस्ते ज्यादा ताजे
हों । लेकिन दस्तों की रद्दोबदल की बात पक्की है—
कल सवेरे ही ।

भाऊ : तब ठीक है । मैं खुद जाऊंगा तोपों के साथ । यही
मौका होगा गोलाबारी का ।

नरसिंह : आपकी बड़ी तोपों के लिए सिना नदी के दक्षिणी
मोड़वाला किनारा उपयुक्त रहेगा, भाऊसाहब ।
उसके सामने ही वह घाटी है, जिसमें होकर निजाम
के आगेवाले दस्ते पीछे जायंगे ।

भाऊ : ठीक, बहुत ठीक ... वहां पेड़ों की आड़ भी है । ...
आपके तोपचियों के निशाने ठीक बैठेंगे, आलीजाह ।

सिंधिया : यही तो मैं चाह रहा था । आप मेरी बाकी फौज को
भी होशियार कर दें ।

फड़के : सवेरे आपके साथ मैं भी चल् मोर्चे पर, भाऊ-
साहब ?

भाऊ : तुम ? ... मेरे विचार से, बाबा फड़के, तुम्हें पैदल
और घुड़सवार सेनाओं की रसद का प्रबन्ध देखकर,

जरूरत पड़ने पर, एक साथ हमला करने के लिए तैयार रहना है। अगर गोलाबारी का जवाब देने का साहस किया उन लोगों ने तो—

फड़के : तो हर दिशा से मराठों की फौज उनपर टूट पड़ेगी। ... ठीक ! ... हम लोगों के खड्ग और बंदूकों की जंग घोने का दिन आ गया।

जिन्से० : नरसिंहराव, तुम्हारी इस खबर ने घाटी में घिरे पथिकों को नया रास्ता दिखा दिया।

सिंधिया : काम के आदमी हो, नरसिंहराव। ...

नरसिंह : भाग्यवान् हूं, सिंधिया महाराज।

भाऊ : एक काम और कर सकोगे ?

नरसिंह : आज्ञा दीजिये, भाऊसाहब।

भाऊ : जोखिम का काम है।

नरसिंह : जोखिम से मैं नहीं डरता, सेनपति।

जिन्से० : निजाम के हरम तक यह साड़ियों के सौदागर बनकर पहुंच चुके हैं।

सिंधिया : साड़ियों के सौदागर। (हँसी) ... ऐसी कौनसी साड़ियां थीं, जिन्हें हरम तक पहुंचाने का जिम्मा तुमने लिया, नरसिंहराव।

नरसिंह : किसी दिन आपको दिखाऊंगा, सिंधिया महाराज। ... लट्टू हो जायेंगे आप। पांच गज लम्बी साड़ी, पर वजन केवल पांच तोले।

सिंधिया : गजब ! ... बहुत देखे-गुने कलावंत जान पड़ते हो, नरसिंहराव।

नरसिंह : आज तो मराठा-पंथ का सैनिक मात्र हूं, महाराज।

- भाऊ** : खर्दा के गढ़ में निजाम सारी रसद जमा कर रहा है, जानते हो न ?
- नरसिंह** : जीहां ।
- भाऊ** : और वह रास्ता भी जानते हो, जिसपर से रसद की गाड़ियां आ-जा रही हैं ।
- नरसिंह** : जीहां । किले के पीछे एक नाला है । उसपर चार नावों से एक तंग पुल बनाया गया है । वही रास्ता है । आज रात के जश्न के भांड और नक्काल उसी रास्ते से लाये गए थे और लौटेंगे ।
- भाऊ** : तुम उन लोगों में घुल-मिलकर जा सकोगे ?
- नरसिंह** : मैं तो आज रात के नाटक में उन लोगों के साथ रूप भी धरूंगा ।
- भाऊ** : बहुत ठीक । ... उनके साथ उसी रास्ते से जाओ और ... और नाले पर पुल को काट दो । ... बोलो, काट सकोगे ?
- नरसिंह** : (कुछ सोचकर) कोशिश करूंगा । ... सेनापति, पंथ के आशीर्वाद से यह अनुष्ठान पूरा करूंगा ।
- भाऊ** : शाबाश ! ... गोविन्दराव काले को आज रात ही सावधान कर दो ।
- फड़के** : हां ! गोविन्दरावजी से कह दो । गोलाबारी के नक्कारखाने में अब वह मेलमिलाप की तूती बजाने की कोशिश न करें ।
- नरसिंह** : (जाते-जाते रुकता है) नहीं, बाबा फड़के । वह तूती तो उस वक्त भी बोलेगी जब पंथ का झंडा हैदराबाद के महलों पर लहरायेगा और पंथ के प्रताप का

गर्जन निजाम और मुशीर-उल-मुल्क की घुड़कियों को हमेशा के लिए शांत कर देगा ।

जिन्से० : फिर वही बात, नरसिंह ।

नरसिंह : सरदार, मुझे कह लेने दीजिये । मैं साधारण मराठा प्रजा हूं । मुझे ऐसा अवसर कहां मिलेगा जब श्रीमानों के सामने अपनी बातें खोलकर कह सकूं ।

सिंधिया : समय कम है, नरसिंह । दिन ढल चुका है ।

नरसिंह : मेरी विनती भी एक ही है, सिंधिया महाराज ! सेनापति मेरी एक ही बात है । आप भी सुनें, बाबा फड़के ! इस युद्ध में हमारी जीत निश्चित है । श्रीमंत के झंडे के नीचे शक्ति का अजेय पुंज एकत्र हुआ है । पर मेरी विनती है कि विजय के बाद जब आपलोग निजाम की उद्दण्डता और चौथ का निबटारा करने बैठें तब मराठा और निजाम राज्यों में स्पष्ट शब्दों में दो घोषणाएं करा दें —

सिंधिया : निराली बातें हैं तुम्हारी ! लेकिन कहे जाओ ।

नरसिंह : पहली घोषणा तो यह कि दोनों राज्यों में हिन्दू और मुसलमानों को अपने धर्म-काज करने की पूरी आजादी होगी, न दखन में गोवध होगा, न महाराष्ट्र में खुदापरस्ती पर रोकटोक । और दूसरी घोषणा यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों परमात्मा की एक बराबर संतान हैं । इसलिए न हिन्दू-मंदिरों पर आघात होगा, न मुसलमान मजारों, पीरों और पैगम्बरों का अपमान किया जायगा । दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से

रहेंगे—एक मां की गोदी में दो भाई । (सब लोग चुप हैं ।) आपलोग चुप हैं—सिधिया महाराज ! भाऊजी साहब !

भाऊ : (थोड़ी देर बाद) हमने तुम्हारी बात सुन ली है, नरसिंहराव । ऐसी बात की तुरंत ही मंजूरी देना संभव नहीं । लेकिन सेनापति के नाते इतना वायदा करता हूं कि तुम कल शाम तक अगर इस काम को पूरा कर देने की खबर दे सके, तो विजय के बाद संधि के मौके पर परिषद् के सामने तुम्हें अपनी बात कहने दी जायगी ।

नरसिंह : मेरे निवेदन पर ठीक मौके पर विचार कर लिया जाय, यही काफी होगा । स्वयं मौजूद होऊं या नहीं—इसकी मुझे चिन्ता नहीं ।

फड़के : लेकिन शर्त—

भाऊ : कल शाम तक—

नरसिंह : कोई बात न उठा रखूंगा । आगे हरि इच्छा ! ...
(जाते-जाते) प्रणाम ।

जिन्से० : नरसिंह, नदी-तट तक तुम्हें पहुंचाने में भी चलता हूं ।

नरसिंह : चलिये, सरदारसाहब ।

[दोनों का प्रस्थान]

सिधिया : (कुछ देर बाद) क्या ख्याल है, आपका भाऊ ?

भाऊ : आदमी खरा है ।

फड़के : लेकिन बातें बहकी-बहकी करता है ।

भाऊ : जो हो, युद्ध का मार्ग निश्चित है । चलें, नाना

फड़नवीस हमलोगों की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।...
आप चलेंगे उनके तम्बू को, सिंधिया महाराज !

सिंधिया : इस वक्त मुझे दूसरा काम है। लेकिन मैं तो आप लोगों के परामर्श में शामिल हूँ। कह दीजिये मेरी सारी फौज कल आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत है।... चाहें तो सवेरे तोपों के साथ मैं भी चलूँ मोर्चे पर ?

भाऊ : जी नहीं, आप क्यों कष्ट करें। मैं विठ्ठल को ले जाऊंगा।...वहां से लौटने पर यही आपके तम्बू पर आऊंगा और नरसिंहराव के आने पर हमलोग अगला कदम उठायेंगे।

फड़के : चलिये। निज़ाम के तम्बू में जश्न की तैयारियां हो रही होंगी। हम लोगों की नकलें होंगी और हम—

भाऊ : आज नकल लेकिन कल—कल असलियत ! चलो बाबा फड़के—

[दोनों का प्रस्थान]

सिंधिया : (स्वयं) कल...लेकिन आज की रात ! रातें आती हैं और सूनी गुजर जाती हैं।...यही तो झंझट है युद्ध के मैदान में !...पूना के शरदोत्सव-वाली वह युवती।...याद की बिजली रात को रोशन तो नहीं कर सकती।... (सहसा कुछ याद आते ही ताली बजाता है) कोई है ? (बरबान आता है।) बाहर कोई मिलनेवाला है ?

बरबान : जी नहीं, गरीबपरवर !

सिंधिया : मुझे इंतजारी है। कोई आये तो फौरन खबर देना।
(दरबान जाता है) . . . (इधर-उधर घूमता है)
. . . लोग कहते हैं, विश्वास की भीत पर दुनिया
कायम है . . . हूं . . . गलत बात . . . बिल्कुल
गलत बात।

[पीछे की तरफ से शर्जेराव घाटगे का प्रवेश]

शर्जेराव : बिल्कुल तो नहीं, लेकिन बहुत-कुछ गलत है, महाराज !

सिंधिया : कौन ? शर्जेराव घाटगे ? छिपकर बैठे हुए थे क्या ? मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा में था।

शर्जेराव : छिपना अच्छा हुआ एक तरह से। आया तो जान पड़ा आप लोग मंत्रणा में हैं। उलटे पैर लौट रहा था, पर सोचा छिपकर सुन लेना चाहिए। शायद आपके कुछ काम आ सकूँ। सो ठीक ही हुआ।

सिंधिया : आपने सब सुन लिया है ? कल की तैयारी ?

शर्जेराव : जी हां . . . वह सब ठीक है। . . . लेकिन अगर आप किसीसे न कहें तो एक चेतावनी आपको दे दूँ, सिंधिया महाराज !

सिंधिया : चेतावनी ?

[दरबान का प्रवेश]

दरबान : सरकार ! —

सिंधिया : जाओ ! अब हमें किसी की इंतजारी नहीं है और किसीको अंदर न आने दो।

दरबान : जो आज्ञा (जाता है)

शर्जेराव : किसीसे भी न कहियेगा। भाऊसाहब, जिन्सेवाले—

किसीसे भी नहीं। कम-से-कम अभी नहीं।

सिंधिया : वायदा करता हूँ। बताइये, क्या चेतावनी है !

शर्जराव : जिस भेदिये को आप लोगों ने इतनी लगाम दे रखी है, उससे सावधान रहें।

सिंधिया : नरसिंहराव ! ... आपका मतलब ! ... लेकिन ... लेकिन आदमी काम का जान पड़ता है।

शर्जराव : काम का आदमी तो है, लेकिन ...

सिंधिया : जिन्सेवाले हमारे खास सरदारों में से हैं। उन्हींका तो भेदिया है वह। और फिर जो समाचार उसने दिया—वह तो बिल्कुल सही जान पड़ता है।

शर्जराव : मैं कब कहता हूँ कि सही नहीं है ? सिपहसालार आगे-पीछे के दस्तों में अदल-बदल करेगा—यह समाचार सही हो सकता है। आज जश्न में नकल होगी—यह भी सही खबर हो। लेकिन सिन्धिया महाराज, विश्वासों की नींव पर ही छल की दीवार खड़ी की जाती है।

सिंधिया : यानी ?

शर्जराव : सुनी नहीं आपने उसकी घोषणा ? किस जोश और तेजी के साथ मुसलमानों की तरफ से वकालत कर रहा था ? एक बार नहीं, कई बार।

सिंधिया : उसकी वे बातें अटपटी तो थीं पर—

शर्जराव : आमने-सामने मराठों और मुगलों की सेनाएं पड़ाव डाले पड़ी हैं। युद्ध का डंका बजने ही वाला है। ऐसे समय में यह नरसिंहराव, वकालत कर रहा है—
मुसलमानों की। ... कल अगर निजाम की ही

वकालत करने लगे—

सिंधिया : हिन्दू और मुसलमानों का मेल—

शर्जेराव : मैं कब कहता हूँ कि मेल न हो ? लेकिन इस समय इन बातों का प्रचार करने का क्या मतलब हो सकता है ?

सिंधिया : जिन्सेवाले !

शर्जेराव : जिन्सेवाले से अधिक मैं उसे जानता हूँ। मेरे ही गांव कागल का रहनेवाला है नरसिंहराव। (रुककर, सावधानी के स्वर में) मुझे लगता है कि निजाम के दस्तों से उसकी मिली-भगत है।

सिंधिया : गजब ! . . . तब तो परशुराम भाऊ को सावधान करना होगा। शायद कल की योजना बदलनी पड़े।

शर्जेराव : अभी नहीं। कल की योजना चलने दीजिये। मैं रातों-रात अपने भेदिये भेजता हूँ। कल यहीं आप-से मिलूंगा।

सिंधिया : और कल की तैयारी ?

शर्जेराव : चलने दीजिये। आक्रमण के लिए प्रस्तुत रहना है। पर पीछे से कोई दगा न दे जाय—यही देखना है। मुमकिन है, कुछ भी न करे वह, लेकिन उसका कपट जाहिर है।

सिंधिया : अच्छा हुआ जो आप आ गये, हालांकि मैंने तो आपको एक दूसरी बात करने के लिए बुलाया था। . . . मालूम है ?

शर्जेराव : जानता हूँ। . . . लेकिन . . . सिन्धिया महाराज, मैं ब्राह्मण हूँ, और — (रुक जाता है ।)

- सिंधिया** : मालामाल कर दूंगा आपको, शर्जेराव ।
- शर्जेराव** : उसकी बातें फिर होंगी । . . . मेरी कुछ निजी कठिनाइयां हैं । . . . आपकी दया-दृष्टि चाहिए । कागल की किलेदारी . . .
- सिंधिया** : सब कठिनाइयां आपकी दूर हो जायंगी । मैं नानासाहब फड़नवीस से कह चुका हूं कि युद्ध के बाद ही आपको मेरी नौकरी में आने दें । यहां आपकी पदोन्नति कर दूंगा ।
- शर्जेराव** : अनुग्रहीत हूं, सिन्धिया महाराज । . . . उपकार का बदला चुका दूंगा । . . . आपका प्रताप दुगना बढ़े—आपसे स्पर्धा करनेवालों का सिर नीचा हो—यही मेरी कोशिश रहेगी । . . . आपको मेरी जरूरत है, सिन्धिया महाराज, और मुझे आपकी . . . चलता हूं, कल यहीं . . .

[प्रस्थान]

- सिंधिया** : (कुछ देर बाद) खौफनाक आदमी है । . . . चमकती शमशीर की तरह भयानक ! . . . मगर, खून की प्यासी शमशीर में भी आकर्षण होता है । . . . मुझे देह की प्यास है, उसे खून की । . . . देह . . . और खून . . . हा हा हा ।

[प्रस्थान]

दृश्य तीन

[स्थान वही । दूसरे दिन की संध्या । नेपथ्य से दूर पर होनेवाली गोलाबारी और कारतूसों की आवाजें, जो कभी-कभी तीव्र हो जाती हैं, लेकिन इतनी नहीं कि बातचीत में विघ्न करें । संवाद बिल्कुल स्पष्ट सुनाई पड़ता रहता है—एक-एक शब्द । दौलतराव सिन्धिया बैठे हुए अपने पत्रलेखक को पत्र लिखवा रहे हैं । प्रवेश-द्वार की ओर पीठ ।]

सिन्धिया : लिखो—“सिद्ध श्री पूजनीया माताजी बाई यमुना-बाई और बाई लक्ष्मीबाई को दौलतराव सिन्धिया का प्रणाम पहुंचे । उज्जैन से भेजी हुई आपकी चिट्ठी मिली । यह उत्तर मैं युद्ध के मैदान से भेज रहा हूं । निजाम की शेखी समाप्त करने का दिन आ पहुंचा है । आपने अपने खर्चों के विषय में लिखा है और पिताजी के देहान्त के बाद किये गए मेरे वायदे की ओर संकेत किया है । . . . आप तो . . . आप तो . . . ” . . . क्या लिखा है अबतक ? सुनाओ तो ।

[इस बीच प्रवेश-द्वार से आकर शर्जेंराव पीछे खड़ा हो गया है, चुपचाप । सिन्धिया और उसके कर्मचारी को उसकी उपस्थिति का आभास नहीं है ।]

पत्रलेखक : जी, पिछला वाक्य यह है (पढ़ता है) “आपने अपने खर्चों के विषय में लिखा है और पिताजी के देहान्त

के बाद किये गए मेरे वायदे की ओर संकेत किया है।”

सिंधिया : वायदा ? वायदा नहीं। लिखो “पिताजी के देहान्त के बाद की गई बातचीत का उल्लेख किया है।” आगे लिखो……“लेकिन आप दोनों जानती ही हैं कि मुझे गोद लेने पर स्वर्गीय पिताजी ने आप दोनों विमाताओं के लिए मेरी जिम्मेदारी का कोई जिक्र नहीं किया था। फिर भी मैंने बराबर आप दोनों का ख्याल रखा है। परन्तु राज्य-संचालन की कठिनाइयों को समझकर आप दोनों को अपने खर्चे कम करने चाहिए। निजाम से युद्ध के बाद, मुमकिन है, हमारी कठिनाइयां कम हो जायें। परन्तु मुझे और भी काम देखने हैं। अभी और कोई उम्मीद पक्की तौर से नहीं दे सकता। आप दोनों अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें। इति !”……लाओ, मैं दस्तखत कर दूँ। (दस्तखत करता है।)

शर्जेंराव : (आगे बढ़कर) युद्ध के शिविर में भी आपको सौतेली माताओं की फिजूलखर्ची और घरेलू चिन्ताओं का ध्यान रखना पड़ता है, सिन्धिया महाराज !

सिंधिया : (चौंककर) कौन ? शर्जेंराव घाटगे ? आप बड़े आहिस्ता से आये !

[पत्रलेखक का प्रस्थान]

शर्जेंराव : जी। …ये दोनों आपको चैन न लेने देंगी।

सिंधिया : जब आपने सुन लिया है तो यह भी जान लीजिये कि ...

शर्जेराव : मैं जानता हूं।

सिंधिया : क्या ?

शर्जेराव : यह कि ये दोनों सौतेली माताएं आपसे कुछ भी पाने की हकदार नहीं हैं।

सिंधिया : घाटगेजी, आप बात को बहुत जल्दी समझते हैं।

शर्जेराव : और फिर आपके अपने खर्चों की भी तो कमी नहीं।

सिंधिया : आप देख ही रहे हैं। इतनी बड़ी फौज और तोप-खाना ...

शर्जेराव : और फिर सिन्धिया महाराज के अन्तःपुर की शोभा भी तो अभी आनी है।

सिंधिया : उस बात पर आपने फिर सोचा ?

शर्जेराव : सिन्धिया महाराज ने तो मुझे मालामाल कर देने की आशा दी थी कल ही। ...लेकिन देखता हूं कि ... कि अभी तो आपका अपना ही ठिकाना नहीं है।

सिंधिया : निजाम की चौथ में मेरा सबसे ज्यादा भाग होना चाहिए।

शर्जेराव : इस यज्ञ में इतने पुजारी हैं कि प्रसाद का बंटवारा होते-होते न जाने कितना समय बीत जाय !

सिंधिया : हूं ! (सोच में पड़ जाता है।)

शर्जेराव : मेरे ऊपर भरोसा करें तो आपको एक नई दिशा बता सकता हूं।

सिंधिया : अभी तक तो किसीके ऊपर इतना भरोसा किया

नहीं है सखारामजी ।

शर्जेराव : आलीजाह, मराठा-पंथ में एक ही तिजौरी में भर-
पूर धन-दौलत जमा हो जाय और बाकी नेता टट-
पुंजिये रहें—यह न्यायसंगत नहीं जान पड़ता ।

सिंधिया : आप का आशय—शर्जेराव ?

शर्जेराव : (चारों तरफ देखकर फिर दबी, लेकिन स्पष्ट
आवाज में) नाना फड़नवीस की तिजौरियों में नौ
करोड़ रुपया है ।

सिंधिया : नौ करोड़ ! (कुछ देर बाद शर्जेराव का हाथ पकड़-
कर) शर्जेरावजी, आपको जल्दी ही मेरे दरबार
में आ जाना चाहिए ।

शर्जेराव : तैयार हूं, आलीजाह ! युद्ध समाप्त होते ही । . . .
अभी तो दूसरा ही निश्चय आपको करना है ।

सिंधिया : हमारी तोपें इसी वक्त परशुराम भाऊ के नेतृत्व में
गरज रही हैं ।

शर्जेराव : सुन रहा हूं गोलाबारी के धमाके ।

सिंधिया : और हमारे सवार दस्ते इंतजार कर रहे हैं । ज्योंही
नरसिंहराव पुल तोड़ने की खबर लायेगा, ये सवार
और सारी पैदल फौज एक साथ दुश्मन पर टूट
पड़ेंगे !

शर्जेराव : (किंचित् व्यंग्य के साथ) नरसिंहराव !

सिंधिया : आपका विचार है नरसिंहराव लौट नहीं पायेगा ?

शर्जेराव : नहीं-नहीं । वह तो शायद आता ही हो ।

सिंधिया : तब ?

शर्जेराव : कल रात, मैंने आपसे वायदा किया था । मेरे भेदिये

ने खबर दी है . . . मेरा अनुमान सही निकला ।
नरसिंहराव विश्वासघाती है ।

सिंधिया : सबूत ?

शर्जेराव : पक्का सबूत है । . . अभी-अभी मोर्चे पर एक भारी
दुर्घटना हो गई ।

सिंधिया : दुर्घटना ?

शर्जेराव : उसीकी सूचना देने आपके पास आया हूं । निजाम
के दस्तों पर गोलाबारी करने के लिए सबसे बड़ी
तोपों के लिए भाऊसाहब ने जो स्थान कल रात
चुना था, ठीक वहींपर दुश्मनों की गोलियों की
बौछार हुई । हमारे एक आदमी की जान जाती
रही । परशुराम भाऊ के भी थोड़ी चोट आई ।

सिंधिया : तब तो, शर्जेरावजी, देरी का काम नहीं है । हमारे
और होलकर के सवारों को फौरन हमला कर देना
है । नरसिंहराव की प्रतीक्षा करना जरूरी नहीं ।
चलिये, हम स्वयं चलें ।

शर्जेराव : नरसिंहराव की प्रतीक्षा करना जरूरी है भी और
नहीं भी ।

सिंधिया : अब सोच-विचार का समय नहीं है,
घाटगेजी ।

शर्जेराव : नहीं, महाराज ! तनिक रुकिये और सोचिये । ठीक
उसी स्थल पर दुश्मन की गोलियां आईं, जहां
परशुराम भाऊ बड़ी तोपें रखवा रहे थे । . . मैंने
आपसे कहा था न कि नरसिंहराव की निजाम के
पहरेदार दस्तों से मिली-भगत है । मेरे भेदिये ने उस

बात की पुष्टि की और... फिर यह गोलियों की बौछार !

सिंधिया : (सोचते हुए) आप ... आप ठीक कहते हैं । नरसिंहराव ने ही तो वह मुकाम बताया था ।

शर्जोराव : मुसलमानों की हिफाजत और धर्म के लिए उसका वह बारम्बार आग्रह करना । . . .

सिंधिया : (वही मुद्रा) हां ! ... उसकी वे शर्तें ,,, वे घोषणाएं ! ... आप ठीक कहते हैं ।

शर्जोराव : निजाम के कलावन्तों और नक्कालों के साथ उसकी सांठ-गांठ ।

सिंधिया : मराठा नेताओं की उस बीभत्स नकल में वह शामिल था । आप ठीक कहते हैं ... घाटगेजी ।

शर्जोराव : और ... और फिर यह गोलियों की बौछार, जिसमें विट्ठल मारे गये ।

सिंधिया : (साबेश) गहरी साजिश, शर्जोरावजी, भयंकर ... भयंकर विश्वासघात !

शर्जोराव : जीहां, भयंकर विश्वासघात ! और अगर इस भयंकर विश्वासघात के परिणाम से बचना है तो तुरन्त कार्रवाई करनी होगी ।

सिंधिया : परशुराम भाऊ शायद यहीं आते हों। उनसे और नाना फड़नवीस से मशविरा करना जरूरी है ।

शर्जोराव : उसके लिए अवसर नहीं है, सिंधिया महाराज । ऐसे मामले में आप अपने अधिकार का उपयोग करें । बाद में ये सब लोग आपके ही अनुग्रहीत होंगे ।

सिंधिया : फिर भी ...

शर्जेराव : आपने मुझे अपना विश्वासपात्र माना है । इस मामले को मेरे ऊपर छोड़ दीजिये ।

सिंधिया : क्या कीजियेगा ?

शर्जेराव : आप इजाजत दें तो..... (सिंधिया के कान में कहता है ।)

सिंधिया : लेकिन इसके लिए तो.....

शर्जेराव : मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है.....सवारी का भी ।

सिंधिया : और....और उसके बाद ?

शर्जेराव : (अपने गले के चारों ओर हाथ से इशारा करता है ।) आपकी आज्ञा पाते ही ।

सिंधिया : दूसरों से भी सलाह ले लेते तो.....

शर्जेराव : आपने अभी कहा था कि मेरे बराबर किसीपर आपने भरोसा नहीं किया ।

सिंधिया : शर्जेरावजी !

शर्जेराव : दुविधा छोड़िये, सिंधिया महाराज ! आपको और मुझे साथ-साथ बहुत-से काम करने हैं । यह तो मामूली-सी कार्रवाई है । यशस्वियों के भविष्य का निमंत्रण रक्त के वर्णों में लिखा होता है । चलिये आप नाना फड़नवीस के तम्बू में पहुँचिये । इस बीच मैं अपना काम पूरा करता हूँ । चलिये ।

[दोनों का प्रस्थान । थोड़ी देर तक मंच खाली है । दूर पर गोलाबारी की मंद आवाज सुनाई पड़ती है और जयजयकार । कुछ देर बात करते हुए परशुराम भाऊ और जिन्सेवाले का प्रवेश । भाऊ के माथे पर पट्टी ।]

- भाऊ** : कहां हैं, सिन्धिया महाराज ?
- जिन्से०** : यहां तो नहीं मालूम देते ? बाहर कोई अनुचर भी नहीं मिला ।
- भाऊ** : क्या उन्हें इस दुर्घटना की सूचना मिल गई ?
- जिन्से०** : शायद किसी हरकारे ने खबर दे दी हो ।
- भाऊ** : हो सकता है ।
- जिन्से०** : अब वे आक्रमण करने को आतुर होंगे ।
- भाऊ** : नरसिंहराव की थोड़ी देर प्रतीक्षा और कर लेना अच्छा होगा । सरदार, आप तनिक घोड़े पर दौड़ जायं, बाबा फड़के के पास । कहीं जल्दी ही सवारों को वह हुक्म न दे दें । मैं यहीं ठहरता हूं । नरसिंहराव आता होगा ।
- जिन्से०** : जीहां, (जाते-जाते) आप थोड़ा आराम करें । माथे पर चोट है और बहुत-से काम करने हैं ।

[प्रस्थान]

- भाऊ** : (स्वगत) माथे पर चोट ! विट्ठल मारा गया ! उसके बूढ़े पिता को क्या जवाब दूंगा ? (इस स्वगत के बीच कभी बैठता है, कभी चिन्तित मुद्रा में इधर-उधर घूमता है) छिः ! मराठा सेनापति रुद्र के तीसरे नेत्र की झलक से ठिठके ! खोलो, महादेव तीसरा नेत्र ! तानो भृकुटि ! युद्धस्थल पर तुम्हारा ही दरबार जुटेगा, भगवन् ! आंखों के आगे तुम्हारा अद्भुत ताण्डव नृत्य ! कानों में तुम्हारे डमरू की ललकार ! क्या कहा था छत्रपति

शिवाजी के कवि भूषण ने !^१ क्या…… (भूषण का कवित्त गुनगुनाता है—पहले मंद स्वर में, फिर उठते जोश के साथ स्वर भी ऊंचा और स्पष्ट हो जाता है।)

[कवित्त]

कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज वीर,
धौसा की धुकार ते पहार दरकत हैं ।
गिरि कुंभ मतवारे सो नित फुहारे छूटे,
कड़ाकड़ छिति नाल लाखों करकत हैं ।
मारे रन जोम के जवान खुरासान केते,
काटि काटि दाटि दाबे छाती थरकत हैं ।
रनभूमि लेटे वे चपेटे पटनेते पर,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं ॥

[कवित्त समाप्त होने के पूर्व ही नरसिंहराव का प्रवेश]

नरसिंह : वाह ! ……वाह भाऊसाहब । ……यह वाणी सुनकर मेरी सारी थकान जाती रही । ……अंग फड़कने लगे । ……लेकिन ……लेकिन आपके माथे पर यह चोट !

भाऊ : आ गये, नरसिंह ! मराठा वीरों का तो यही जश्न होता है । ……बताओ निजाम के जश्न का क्या हाल हुआ ?

नरसिंह : वही जो मदान्धों के जश्नों का होता है । महफिल

^१ यदि अभिनय में भूषण के कवित्त का भली-भांति पाठ न हो सके तो तांडव-मूर्ति शिव की स्तुति में कोई भी रौद्ररसपूर्ण संस्कृत श्लोक कहा जा सकता है ।

जमी, लेकिन अब उनके जमे हुए पैर उखड़ रहे हैं। जिन मुखड़ों की नकल देखकर वे हँसे थे अब उन्हीं-की गर्जन सुनकर वे भाग रहे हैं। आपकी तोपों ने दुश्मन के बीच तहलका मचा रखा है।...लेकिन...आपके माथे पर यह चोट !

भाऊ : नरसिंह, विट्ठल, मेरा भतीजा मेरे पास ही खड़ा होकर तोपचियों को आदेश दे रहा था कि कहींसे गोलियों की बौछार आई। विट्ठल वहीं ढेर हो गया।

नरसिंह : गोलियों की बौछार !...लेकिन यह नामुमकिन है।...निजाम के जिन दस्तों के पास बन्दूकें थीं वे तो उस मोर्चे पर थे ही नहीं। सिर्फ चंद पहरदारों के पास बन्दूकें थी। लेकिन वे मुट्ठी भर पहरदार और गोलियों की बौछार !...यह कैसे ?

भाऊ : सिर्फ एक बौछार !...उसने एक जान ली, पर हमारे तोपों की बरसात घहरा उठी मूसलाधार।

नरसिंह : तो भाऊसाहब, अब अपने सरदारों और पैदल सेना के तूफान को भी उमड़ने दीजिये। बहने दीजिये उस झंझावात को, जिसके प्रचंड वेग के आगे सूखे तिनकों की तरह मुशीर-उल-मुल्क के दस्ते छिन्न-भिन्न हो जायें।

भाऊ : तुम्हारे कहने भर की देर है, नरसिंहराव। मराठा सेनापति आज तुम्हारे शब्द की राह देख रहा है। बताओ, तुम्हारा काम पूरा हुआ ?

नरसिंह : जीहां, काम पूरा हुआ।

भाऊ : पूल तोड़ दिया तुमने ?

- नरसिंह** : मैंने और मेरे उन कलावंत साथियों ने ।
- भाऊ** : शाबास नरसिहराव, शाबाश !
- नरसिंह** : अगर इसी समय आप पूरी शक्ति से आक्रमण कर दें, तो निजाम की फौज खर्दा के किले में आसरा लेगी और . . .
- भाऊ** : और उस किले में रसद पहुंचने के रास्ते को तुमने तोड़ ही दिया है । . . . मुशीर-उल-मुल्क मुट्ठी में आया ही चाहता है । . . . नरसिहराव, मराठा-पंथ तुम्हारा आभारी है ।
- नरसिंह** : भूल तो नहीं गये वह वायदा, जो कल रात आपने किया था ?
- भाऊ** : भूला नहीं हूं, नरसिंह ।
- नरसिंह** : पुल तोड़ने में जिन कलावंतों ने मुझे मदद दी थी वे मुसलमान ही थे ।
- भाऊ** : हमारा युद्ध मुसलमान प्रजा के खिलाफ नहीं है । निजाम और उसके वजीर के दुराग्रह को दूर करने के लिए . . .
- नरसिंह** : और हिन्दू और मुसलमान प्रजा को अपने धर्म की आजादी देने के लिए ।
- भाऊ** : तुम्हारी आवाज न्याय की आवाज है, और समय आने पर मैं भी उस आवाज को उठाऊंगा । . . . लेकिन इस समय तो सिर्फ एक आवाज सुनने के लिए मेरे कान बेताब हैं—हमारी सवार-सेना के घोड़ों की टाप, हमारी पैदल फौज के नारों का निर्घोष !

नरसिंह : तो चलिये बाबा फड़के के पास । सवार-दस्तों को आज्ञा दीजिये ।

भाऊ : जिन्सेवाले भी वहीं गये थे । लौटते होंगे ।
[एक अनुचर का प्रवेश । डाढ़ी बढ़ाये है ।]

अनुचर : श्रीमन्, आपको आलीजाह सिन्धिया महाराज ने याद किया है ।

भाऊ : कहां हैं, सिन्धिया महाराज ?

अनुचर : नाना फड़नवीस के खेमे में ।

भाऊ : क्या सरदार जिन्सेवाले वहां पहुंच गये ?

अनुचर : वह तो नहीं पहुंचे । लेकिन आपको फौरन ही याद किया गया है । कोई जरूरी बात है ।

भाऊ : मेरे पास तो उससे भी ज्यादा जरूरी समाचार है ।
... खैर ... चलो । ... (अनुचर को देखता हुआ) ... बड़ी लम्बी डाढ़ी बढ़ाई है तुमने ।

अनुचर : युद्ध के बाद ही सफाई होगी, भाऊसाहब ।

नरसिंह : मैं भी चलूं ?

अनुचर : आपको अकेले ही बुलाया है, भाऊसाहब ।

भाऊ : नरसिंहराव, तुम ठहरो । जिन्सेवाले लौटते होंगे । मैं तुम्हारे पास शीघ्र ही सूचना भेजता हूं ।

[भाऊ और अनुचर का प्रस्थान । नरसिंह अकेला विचारमग्न इधर-उधर घूमता है । थोड़ी देर के लिए एक तरफ खड़ा होकर आप-ही-आप बोलता है । तभी जिस ओर उसकी पीठ है उसी ओर से वही डाढ़ीवाला अनुचर आकर खड़ा हो जाता है और नरसिंह का स्वगतालाप सुनता है ।

नरसिंह को उसकी उपस्थिति का ज्ञान नहीं है।
अनुचर के रंग-ढंग से उद्‌डता झलक पड़ती है।]

नरसिंह : (स्वगत) लेकिन लेकिन वह गोलियों की
बौछार आई कहां से ? पहरेंदार ?
..... पर पर। खैर, ... जो हुआ सो
हुआ। मेरा तो काम पूरा हो गया मेरा
तो

अनुचर : (कर्कश और कृत्रिम स्वर में) अभी काम पूरा नहीं
हुआ, नरसिंहराव।

नरसिंह : (चौंककर) कौन ?

अनुचर : अभी तो तुम्हारा काम, तुमाम होना है।

नरसिंह : उद्‌ण्ड अनुचर, क्या बकता है तू ? (तलवार
पर हाथ ले जाता है।)

अनुचर : क्या बकता हूं ? (ताली बजाता है। तुरन्त
चार सैनिक नंगी तलवारें लिये आते हैं और
नरसिंह को चारों ओर से घेर लेते हैं। नरसिंह
भौंझका रह जाता है।) बांध लो मुश्कें और
कस दो हाथ-पैरों में जंजीर। (चारों सैनिक बैसा
ही करते हैं।)

नरसिंह : (जोर लगाता हुआ) किसकी आज्ञा से, किसकी
आज्ञा से, यह पागलपन ?

अनुचर : आन्हीजाह सिन्धिया महाराज की आज्ञा से।

नरसिंह : सिन्धिया महाराज नहीं, नहीं, नहीं। यह झूठ
है। मैं जोर से चिल्लाऊंगा (उच्च स्वर) कौन
है सरदार जिन्सेवाले यह झूठ है

बचाओ.....सरदार.....सरदार.....

अनुचर : चीखता है तो मुंह पर कपड़ा कस दो ।

नरसिंह : बचाओ ।.....बचाओ ।.....यह अंधेर
सरदार.....सर.....(सैनिक उसके मुंह पर
कपड़ा बांध देते हैं । नरसिंह निरुपाय हो जाता है ।)

अनुचर : ले जाओ फौरन ।.....घोड़े तैयार हैं ।.....रातों-
रात दूर निकल जाओ ।.....छः दिन का रास्ता
चार रोज में पूरा करो ।

एक सैनिक : जो आज्ञा ।.....(नरसिंह को खींचकर ले जाते हैं ।)
[अनुचर अकेला रह जाने पर अपनी नकली डाढ़ी
निकाल फेंकता है । शर्जेराव घाटगे का चेहरा
स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।]

शर्जेराव : (पैशाचिक मुद्रा । हाथ मलते हुए).....हूं ।
ठीक ।.....काम पूरा हुआ ।.....(किंचित्
हँसी).....होगा, होगा क्यों नहीं ?.....
शर्जेराव घाटगे की चपेट में आ गया.....मूढ़ !...
मेरे रास्ते का कंकड़ ।.....ठोक़ लगते ही ।.....
ठोकर (किंचित् हँसी ।.....दूर पर घोड़े की
टाप ।).....गये !.....गये !

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : जी हां, गये ।.....में भी चलता हूं । एक बात है ।
गढ़पति के लिए आदेशपत्र में दूसरी आज्ञा का
उल्लेख नहीं है ।

शर्जेराव : उसके लिए दूसरे आज्ञापत्र पर आलीजाह के दस्त-
खत कराने हैं । उसे दो रोज में भिजवाऊंगा ।

सैनिक : तबतक ?

शर्जेराव : तबतक गढ़पति इंतजार करें। होशियारी से काम लें।

[नेपथ्य में किसीके आने की आवाज]

सैनिक : कोई आ रहा है। चलिये। (जाने को उद्यत)

शर्जेराव : उधर से नहीं। (पीछे की तरफ इशारा करता है)
इधर से। (पीछे की तरफ से दोनों जाते हैं। थोड़ी
देर बाद जिन्सेवाले का प्रवेश।)

जिन्से० : भाऊसाहब ... नरसिहराव ! ... कोई नहीं ? ...
लेकिन, मैंने आवाज कैसी सुनी ? ...कहां चले गये
सब ? ...कोई अनुचर भी नहीं ? (रुककर) मोर्चे
पर कितना कोलाहल है, मगर यहां ...जैसे ...जैसे
कोई सांप सूघ गया हो ...जैसे वधिक के खड्ग की
चमक में पशु की नीरव और मुंदी आंखें। ...वधिक !
...कैसी भीषण कल्पना है यह ! (हठात् गम्भीर
मुद्रा और गहरे स्वर में) कैसी भीषण कल्पना है !

[अंधेरा]

द्वितीय अंक

दृश्य एक

[एक महीने बाद पूना में। खर्दा के युद्ध में मराठों की विजय हो चुकी है। पूना में संधि-वार्ता जारी है।

परदा उठने से एक-डेढ़ मिनट पहले स्त्री-स्वर में सूरदास का भजन^१ सुन पड़ता है]

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।

सदा रहत बरषा रितु हम पै जब तें श्याम सिधारे,
नैन अंजन न रहत निसिवासर कर कपोल भये कारे ।

कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ उर बिच बहत पनारे,
सूरदास प्रभु गोकुल बूड़त काहे न लेत उबारे ॥

[पर्दा उठने पर प्रथम अंक के प्रथम दृश्य का कमरा दीख पड़ता है ।

बायजाबाई एक चौकी पर बैठी गाना सुन रही है । गाने-वाली एक मुसलमान युवती है जो तंबूरा नीचे रख देती है । कमरे में अन्यत्र सरनाबाई कुछ कपड़ों को संभालकर रख रही है और व्यस्त जान पड़ती है]

बायजा० : “निसिदिन बरसत नैन हमारे ।” —बहुत मीठा बोल है तुम्हारा, रहीमन !

रहीमन : रियाज की बात है, बाईसाहब ! थोड़े दिन और रियाज करें तो आपका गला भी निखर आयेगा ।

बायजा० : सच ही तुम मानती हो कि मुझे गाना आ जायगा ?

^१यदि पात्री स्वयं गा सके तो इस गीत को नेपथ्य में न होकर पर्दा उठने पर ही होना चाहिए ।

- रहीमन** : क्यों नहीं। इसीलिए तो घाटगेजी ने मुझे आपकी खिदमत में रखा है।
- सरना०** : (दूर से ही) इसलिए या किसी और मतलब से ?
- रहीमन** : देखती हूं सरनाबाई का मिजाज आजकल बहुत तेजी पर है।
- बायजा०** : न जाने बाबा क्यों चाहते हैं कि मैं जल्दी-जल्दी हिन्दुस्तानी गाने सीख जाऊं।
- रहीमन** : हिन्दुस्तान के महलों की रानियां और बेगमें इस हुनर को जानती हैं।
- बायजा०** : मुझे महल की रानी नहीं बनना है।
- रहीमन** : यह मुखड़ा बाईसाहब ! यह मुखड़ा तो महल ही के काबिल है और महल ही की शोभा बढ़ायेगा।
- सरना०** : गाना तो सीख ही रही हैं, बाईसाहब, महलों की बोली भी आ जायगी।
- रहीमन** : महलों की बांदियों को भी तमीज सीखनी होती है, सरनाबाई।
- सरना०** : मेरा तो सारा जनम इसी तरह गुजर गया। बूढ़ा तोता क्या सीखेगा ?
- रहीमन** : तोता चाहे बूढ़ा हो चाहे जवान, बोलने से बाज्र नहीं आता।
- सरना०** : बूढ़ा तोता न बोले तो मालिक को चेतावनी कौन दे !
- रहीमन** : चेतावनी ! ऐसी कौन मुसीबत आन पड़ी है ?
- बायजा०** : मुसीबत ! तू भी क्या रोना लेकर बैठ गई सरनाबाई, जैसे...जैसे...सूरदास के इस पद की गोपियां,

जिनके नैन निसदिन बरसते रहते थे ।

रहीमन : यह खूब कहा आपने, बाईसाहब !

बायजा० : इस पद की एक बात मेरी समझ में नहीं आई, रहीमन ।

रहीमन : इसी पद को कथक के दो बोलों में बांधा है । कहिये तो नाचकर दिखाऊँ ? मानी साफ हो जायेंगे ।

बायजा० : जो बात मेरी समझ में नहीं आई है, वह दूसरी ही है । गोकुल की गोपियाँ बिछुड़ने के बाद अपने प्यारे की याद में रोती ही क्यों रही ? मथुरा जाकर कान्हा को खोज क्यों नहीं निकाला उन्होंने ?

रहीमन : बेढब सवाल है आपका ! लेकिन ऐसा आप क्यों पूछ रही है ?

बायजा० : क्यों पूछ रही हूँ ? ...सरनाबाई, बता मैं यह सवाल क्यों पूछ रही हूँ ?

सरना० : रानियों के मन की बात हर बांदी तो नहीं समझ सकती ।

रहीमन : वह बांदी ही क्या जो रानी के मन की बात न टोह सके !

सरना० : तो बूझो न यह पहेली तुम्ही ?

बायजा० : (हठात्) रहीमन, तुम जाओ ।

रहीमन : जाऊँ ? ...और आज के गाने का सबक ? सरकार रोज पूछते हैं कितनी तरक्की हुई ?

बायजा० : बाबा के लौटने में अभी काफी देरी है । ...तुम इस समय जाओ । मैं सरनाबाई के साथ थोड़ी देर अकेली रहना चाहती हूँ ।

- रहीमन : सरनाबाई के साथ अकेली। ... (स्वर में तीखापन)
हूं ! ... जो हुकुम। (तंबूरा लेकर चल देती है।)
- बायजा० : (थोड़ी देर बाद सरनाबाई के निकट जाकर) रूठ गई सरनाबाई ?
- सरना० : मैं कौन होती हूं रूठनेवाली !
- बायजा० : मैं जानती हूं, तुझे रहीमन का रहना पसंद नहीं है। लेकिन मेरी अच्छी सरनाबाई, मैंने तो उसे बुलाया नहीं है।
- सरना० : जानती हूं। उस दिन मैंने कहा था न तुमसे कि बाबासाहब ने जो राह पकड़ी है उसमें किसी तरह की गुंजायश नहीं है—मन की नहीं, मन के मीतों की नहीं।
- बायजा० : तूने ठीक कहा था, सरनाबाई।
- सरना० : क्या अब भी तुम ऐसा ममझती हो, बाईसाहब ?
- बायजा० : तेरा मतलब ?
- सरना० : रहीमन नाच-गाने में तो कुशल है ही, मन-ब्रह्मलाव के अनेक साधन भी जानती है।
- बायजा० : (जानी-सी मुस्कान के साथ) तो यह बात है !
- सरना० : बाईसाहब, एक बात कहूं। बुरा तो न मानोगी ?
- बायजा० : क्या ?
- सरना० : बाईसाहब, मुझे फुरसत दे दो।
- बायजा० : फुरसत !
- सरना० : मैंने बहुत दिन निबाहा। जबतक जीवित रहूंगी अपनी बाईसाहब की स्मृति का संबल धारे रहूंगी, पर इस घर की दीवारें मानो मुझपर संदेह की

दृष्टि डाल रही हूँ। फटकार और मारपीट सह लूँ,
पर यह संदेह, यह शक ! मेरा मन थक गया है,
बाईसाहब ।

बायजा० : घर छोड़ना चाहती है, सरनाबाई !

सरना० : अगर आज्ञा दे दो तो ।

बायजा० : (करीब जाकर सरनाबाई की बांहें पकड़कर)
जो कहूँ कि आज्ञा दे दी—

सरना० : (कुछ आहत-सी) तो आज ही चली जाना चाहूंगी ।

बायजा० : कहां ?

सरना० : जहां भगवान ले जाय ।

बायजा० : मैं बताऊँ कहां ? ... लेकिन पहले तू मेरे सवाल
का जवाब दे ।

सरना० : कौन-सा सवाल ?

बायजा० : (सावेश) यही कि राधा और गोपियों ने मथुरा
जाकर कान्हा को खोजा क्यों नहीं ? रोती क्यों
रहीं दिन-रात ? डूबती क्यों रही विरहाश्रुओं की
धार में ?

सरना० : (मानो बायजाबाई के चेहरे पर कोई चमत्कार
देखा हो) बाईसाहब, बाईसाहब, यह मैं क्या
देख रही हूँ तुम्हारे मुखड़े पर ?

बायजा० : सरनाबाई, मैं वह नहीं करना चाहती, जो गोकुल
की गोपियों ने किया । आंसुओं में नहीं डूबूंगी । ...
मैं जाऊंगी उनके पास ।

सरना० : कहां ? मथुरा तो गोकुल के बहुत पास था ।

बायजा० : हैदराबाद पूना से दूर है, मगर बहुत दूर नहीं ।

- सरना ० : नरसिंहराव हैदराबाद में होंगे, यह कैसे कहा जा सकता है ?
- बायजा ० : खर्दा का युद्ध समाप्त हो चुका है। हमारी जीत हो गई और यहां पूना में कई दिन से सन्धि की वार्ताएं चल रही हैं। यहां होते तो एक बार तो मिलते।
- सरना ० : मगर हैदराबाद ?
- बायजा ० : हैदराबाद और मुम्बई। वही साड़ियों का रोजगार।
...सरनाबाई, मैं जाऊंगी हैदराबाद।
- सरना ० : घर छोड़कर—चोरी से ?
- बायजा ० : हां, घर छोड़कर, चोरी से। इस घर की दीवारें तुझ-पर तो संदेह की दृष्टि ही डालती हैं, मगर मुझे तो डस रही है। चारों तरफ से बेदर्री के साथ जकड़-कर डस रही हैं। मैं जाऊंगी।
- सरना ० : जोखिम का काम है।
- बायजा ० : जानती हूं। ...तुझे मेरे साथ चलना है।
- सरना ० : कब ?
- बायजा ० : आज, अभी। ...पेशवाई दरबार से बाबा के लौटने के पहले ही।
- सरना ० : बाईसाहब, निराली आन है तुम्हारी !
- बायजा ० : (सहर्ष) तो तू चलेगी मेरे साथ ? ...हम दोनों का पन्थ एक है, मेरी अच्छी सरनाबाई। रातों-रात निकल जायंगी। युद्धक्षेत्र के गांवों के सैकड़ों कुटुम्ब युद्ध के बाद अपने-अपने घरों को वापस जा रहे हैं। हम लोग उन्हींमें मिल जायंगे। पता भी न चलेगा।

सरना० : तुम्हारी हिम्मत के आगे मेरी समझदारी के पैर नहीं टिक पाते। जानती हूँ यह पागलपन है, बचपना है—

बायजा० : बचपना ।...तूने पहले भी कही थी बचपने की बात ।...लेकिन इसीमें तो मेरा जीवन है ।...और कैसे पाऊंगी नरसिंह को ।...वह मुझे भुलाना चाहते हैं। लेकिन मैं गोकुल की गोपी तो नहीं हूँ ?
मुझे कौन उद्धव भरमा सकेगा ?

सरना० : तुम्हारी यह खुशी, बाईसाहब ! जैसे हफ्तों तक बादल घिरे रहने के बाद सूरज की छटा विकसी हो ।

बायजा० : यही समझ ले। कहीं पौ फटी और रात के अंधेरे में रास्ता दीख गया ।

सरना० : मुझे डर लगता है, बाईसाहब, तुम्हारी यह खुशी देखकर। पैर धरती पर नहीं टिकते ।

बायजा० : सचमुच आज मेरे पैर धरती पर नहीं टिकते ।... चल, जल्दी-से थोड़ा-बहुत सामान बांध लें। देरी का काम नहीं है। चल ।

[दोनों अंदर चली जाती हैं। थोड़ी बेर मंच खाली रहता है। बाहर की ओर से शर्जेराव घाटगे और उनके पीछे-पीछे रहीमन का प्रवेश]

शर्जेराव : कहां है ? ...अरे, यहां तो दोनों में से एक भी नहीं ।

रहीमन : सरकार कोई गुल खिलकर रहेगा ।

शर्जेराव : तेरे मन में पहले भी शक हुआ था ?

रहीमन : जी, सरकार—पर आज जिस ढंग से सवाल पूछा

और फिर जिस तेजी से मुझसे चले जाने को कहा ।
वैसा पहले नहीं हुआ था ।

शर्जेराव : और सरनाबाई ?

रहीमन : बाहर से भौहें तनी रही । पर भीतरी बात कुछ
और जान पड़ती है ।

शर्जेराव : आज मैं जड़ ही काट दूंगा । न रहेगा बांस न बजेगी
बांसरी ।

रहीमन : सरकार, थोड़े ज़ब्त के साथ, मुहब्बत से काम लेकर ।

शर्जेराव : लेकिन एक-न-एक दिन तो बात साफ करनी ही है ।

रहीमन : जीहां, लेकिन ज़रा मुलायम होकर ।

शर्जेराव : मैं समझ रहा हूं ।

रहीमन : हर मौके पर एक ही ढंग के हथियार कारगर नहीं
होते ।

शर्जेराव : तुम्हारा ख्याल ठीक है ।

[अंदर से किसीके आने की-सी आहट]

रहीमन : आ रही है । मैं फिर चलूं । आप बात कीजियेगा ।

शर्जेराव : ठहरो । मैं भी चलता हूं । पहले घर के बाहर छिप
कर देखना है । बात कहांतक बढ़ी है । बाहरवालों
को भी कुछ हिदायत देनी है, सरनाबाई के बारे में ।
[दोनों का बाहर प्रस्थान, सरनाबाई और बायजा-
बाई का प्रवेश । सरनाबाई गठरी लिये है ।]

सरना० : बाई, तुम पहले यहीं ठहरो । मैं बाहर जाकर देख
आती हूं । कोई है तो नहीं ।

बायजा० : ज्यादा देर न लगाना ।

सरना० : इतनी बेताबी अच्छी नहीं, बाईसाहब ।

बायजा० : जा-जा, मेरी अच्छी सरनाबाई । . . . और जल्दी लौटकर बता कि मार्ग हमारा निष्कण्टक है . . .

[सरनाबाई का बाहर की ओर प्रस्थान]

बायजा० : (स्वगत) निष्कण्टक ही होगा मार्ग । . . . कितनी जल्दी-से सब बात बनती जा रही है । . . . (इधर-उधर घूमती है, गुनगुनाती है ।) निसि दिन बरसत — उंह । . . . यह नहीं — “अरी मोहि भवन भयानक लागे माई, श्याम बिना ।” . . . उंहुं यह भी नहीं । “माई मेरे नैनन बान परी री ।” . . . कैसी बात है यह । . . . मिलने पर बताऊंगी तुम्हें नरसिहराव . . . बड़ी देर लगा दी सरनाबाई ने । . . . या मेरा ही मन तेजी से चल रहा है । . . .

[बाहर से आहट]

आ गई सरनाबाई । . . . चलूं ?

[शर्जेराव का प्रवेश]

शर्जेराव : नहीं बेटी, नहीं ।

बायजा० : बाबा ! . . . आप !

शर्जेराव : बेटी मुझे तो पूछा होता । अपने बाप से इतनी नाराजगी कि विदा मांगने की भी जरूरत न समझी ।

बायजा० : बाबा ! मुझे जहर दे दीजिये ।

शर्जेराव : तू मुझे इतना बेदर्द समझती है ? उस दिन मैंने झिड़क दिया, कुछ कह-सुन दिया, कुछ धमकी दे दी, तो सच मान बैठी । . . . ले सच बात आज बताता हूं, बायजाबाई । तनिक बैठ जा । (बायजाबाई को

बिठाता है ।) देख बेटी, मैंने नरसिहराव के लिए तुझे मना तो अवश्य किया था । मेरा मन चाहता था कि मेरी इकलौती बेटी किसी महल की रानी बने, सुख-चैन से रहे ।...कोई बाप अपनी बेटी का आराम चाहे तो इसमें कोई कसूर है ?...माना, मैंने दो-चार कठोर बातें तुझसे कहीं, लेकिन जब देखा तेरी इतनी जिद है तो...तो बायजाबाई मैंने मन-ही-मन तय कर लिया कि खर्दा की लड़ाई समाप्त होते ही तेरा हाथ नरसिंह को पकड़ा दूंगा । ...तुझे ताज्जुब हो रहा है बायजाबाई ?...मैंने तुझपर अपने मन की बात जाहिर नहीं होने दी । ऊपर से सख्ती भी बरतता रहा...लेकिन असल बात यह है कि मैं तुझे नरसिहराव के हाथों मन-ही-मन सौंप चुका था ।

बायजा० : बाबा !

शर्जेराव : हां, बेटी ।...यही बात थी ।...लेकिन क्या कहूं— मेरे मन कछु और है, बिघना के कछु और ।... बायजाबाई खर्दा की लड़ाई ने हमारे अनेक मंसूबे पूरे किये, पर एक मंसूबा तोड़ भी दिया ।... नरसिहराव खर्दा के युद्ध में मारा गया ।

बायजा० : नहीं-नहीं...बाबा...ऐसा मत कहिये ।...ऐसा मत कहिये बाबा ।...नरसिंह...नरसिंह...
[व्यथित हो सिसकने लगती है ।]

शर्जेराव : दुख तो तुझे होगा ही और तेरी पीड़ा मेरे ढाढ़स बंधाने से कम भी नहीं होगी—यह भी मैं

जानता हूँ ।

बायजा० : (रुंधे कण्ठ से) इतने दिन से बताया क्यों नहीं बाबा—बताया क्यों नहीं ? ...ओह ! नरसिंह ! ..

शर्जेराव : तेरा सवाल ठीक है । ...खर्दा की लड़ाई खत्म हुए इतने दिन हो गये. पर मैंने तुझे बताया क्यों नहीं ? ...बताया इसलिए नहीं कि दुश्मन की फौज में मरनेवालों का व्यौरा तो देर ही से मिलता है ।

बायजा० : दुश्मन ?

शर्जेराव : हां बेटी, नरसिंहराव तो निजाम की तरफ से लड़ रहा था, मराठों के विरुद्ध ।

बायजा० : नहीं बाबा...आपने गलत सुना होगा । ...कह दीजिये बाबा कि...आप हँसी कर रहे थे । ...कह दीजिये कि यह सब झूठ है । ...बाबा...बाबा...ओह... (रुदन)

शर्जेराव : मैं जानता था कि यह सब सुनकर बहुत चोट पहुंचेगी तुझे । बहुत कड़ा दिल करके...यह बात तुझसे कह सका हूँ ।

बायजा० : सरनाबाई...सरनाबाई ।

शर्जेराव : सरनाबाई तो अपने गांव गई, बेटी । ...अभी-अभी

बायजा० : ओह ! सरनाबाई, तू भी विश्वासघातिनी निकली ...तुम भी नरसिंहराव ! ...हर तरफ विश्वासघात ! हर तरफ दगा ! ...और बाबा !

शर्जेराव : धीरज घर बेटी, धीरज घर ।

[रहीमन का प्रवेश । कृत्रिम आश्चर्यान्वित मुद्र में बायजाबाई को देखती है, शर्जेराव को देखती

है और बायजाबाई को संभालती है ।)

रहीमन : यह क्या बाईसाहब ! ...सरकार, यह क्या कर डाला आपने ! ...यह रोना-धोना कैसा ? ...

शर्जेराव : रहीमन ! ...

रहीमन : आप जायें सरकार ! ...बाईसाहब को मैं संभाल लूंगी । आप इस वक़्त चले जायें । (शर्जेराव का प्रस्थान ।) ...आपको आराम की जरूरत है, बाईसाहब । ... (तकिये के सहारे बिठाती है ।) ... आपके आराम का भी इंतजाम करूंगी और आपका मनबहलाव भी । ... वह भजन आपको बहुत पसंद आया था न ? ...लीजिये सुनिये—

निसि दिन बरसत नैन हमारे । ... (गाती है)
[क्रमशः अंधकार...बायजाबाई के नैनों में आंसू भरे हैं ।]

दृश्य दो

[पांच-छः महीने बाद ग्वालियर के किले के नीचे एक अंध-कारणपूर्ण तहखाना जो कारागार की तरह इस्तेमाल होता था। एक तंग खिड़की में से भयभीत-से प्रकाश की नन्हीं किरण। पीछे की तरफ एक जीना, जिसके ऊपर लौह द्वार जो दीखता नहीं है। लौह द्वार के खुलने की ध्वनि। अंधकार में जीने पर से दो मूर्तियों का प्रवेश]

पहला स्वर: (दबी आवाज) सरदारसाहब, यही तहखाना है।

सरदार : (उसी तरह दबी आवाज) मैं उससे अकेले में बात करूंगा। तुम जा सकते हो गढ़पति !

गढ़पति : आप बुरा न मानें तो तहखाने के बाहर ताला लगाकर जाऊं। आलीजाह सिधिया महाराज की आज्ञा है।

सरदार : (हँसते हुए) अच्छा ! लेकिन बाद में खोलना न भूल जाना !

गढ़पति : (जाते-जाते) अभी तक तो नहीं भूला। भूलूँ भी तो आपको हजम करने की ताकत ग्वालियर के इस तहखाने में नहीं है, सरदारसाहब। (प्रस्थान)

[लौह द्वार बन्द होने की ध्वनि। थोड़ी देर बाद सरदार आगे बढ़ता है।]

भावभंगिमा और संकेतों से ही आशय स्पष्ट हो जाता था । अनेक दर्शकों का यह विचार था कि यदि इन प्रतिभावान् कलाकारों को हिन्दी में अपने नाटक प्रस्तुत करने का पुनर्बार अवसर मिलता रहे तो वे हिन्दी-उच्चारण का यथेष्ट अभ्यास कर लेंगे और अधिक आत्मविश्वास के साथ बोल सकेंगे । वास्तव में नाटकीय अभिव्यंजनों के लिए मणिपुर के कलाकारों में कुछ जन्मजात प्रतिभा होती है । उनमें हिन्दी के व्यावसायिक रंगमंच के पुष्ट आधार-स्तम्भ बन जाने की क्षमता है । यह बात उड़िया कलाकारों पर भी लागू है ।

भारतीय नाटक के इतिहास के प्राचीन और पूर्वमध्ययुग से एक रोचक तथ्य स्पष्ट होता है । संस्कृत-नाटक जो काश्मीर से केरल और आसाम से सौराष्ट्र तक प्रचलित था, अखिल भारतीय माध्यम सिर्फ इसी कारण नहीं बन गया कि वह संस्कृत और प्राकृत को काम में लाता था, बल्कि इसलिए भी कि हर जगह ढांचा और प्रस्तुत करने की शैली और परंपराएं एक-सी ही थी । इन समानताओं के ही कारण स्थानीय भाषाओं के जन्म के बाद भी नाटकों में संस्कृत और प्राकृत का उपयोग होना संभव रहा । इस अखिल भारतीय नाटक की कुछ विशेषताएं थी, रस के परिपाक पर जोर दिया जाना, गीतों का अधिक संख्या में होना, नृत्य का बराबर उपयोग, कविता का सर्वव्यापी प्रभाव और रुढ़-पात्रों का प्रयोग । यह स्पष्ट है कि ये सब विशेषताएं वर्तमान युग की मांग को पूरा नहीं कर सकती । पर हम एशियावासी कितने ही आधुनिक क्यों न हो जायें, नाटक, गीत और नृत्य का मिला-जुला स्वरूप हमारे स्वभाव और धरोहर का एक अंग ही बन गया है । बर्मा, चीन, जापान, इंडोनेशिया और दूसरे एशियाई देशों में नाटक का यह मिला-जुला रूप कमोबेश रूप में देखने को मिलता है । यह मिश्रित रूप नाटक की आधुनिक परिभाषा के अनुकूल नहीं है, पर आधुनिक लोग इसे चाहें या न चाहें, हमारी नाटक-संबंधी यह मान्यता अनेक युगों की कसौटी पर खरी उतरी है । भारत की तरह जापान में भी पश्चिम से आधुनिक नाटक के कई रूप अपनाये गए हैं, फिर भी वहां नाटक के प्राचीन परम्परावाले रूपों को तिलांजलि नहीं दी गई है ।

इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि जिसे हम नाटक का अखिल भारतीय

दृश्य दो

[पांच-छः महीने बाद ग्वालियर के किले के नीचे एक अंध-कारणपूर्ण तहखाना जो कारागार की तरह इस्तेमाल होता था। एक तंग खिड़की में से भयभीत-से प्रकाश की नन्हीं किरण। पीछे की तरफ एक जीना, जिसके ऊपर लौह द्वार जो दीखता नहीं है। लौह द्वार के खुलने की ध्वनि। अंधकार में जीने पर से दो मूर्तियों का प्रवेश]

पहला स्वर: (दबी आवाज) सरदारसाहब, यही तहखाना है।

सरदार : (उसी तरह दबी आवाज) मैं उससे अकेले में बात करूंगा। तुम जा सकते हो गढ़पति !

गढ़पति : आप बुरा न मानें तो तहखाने के बाहर ताला लगाकर जाऊं। आलीजाह सिंधिया महाराज की आज्ञा है।

सरदार : (हँसते हुए) अच्छा ! लेकिन बाद में खोलना न भूल जाना !

गढ़पति : (जाते-जाते) अभी तक तो नहीं भूला। भूलूँ भी तो आपको हजम करने की ताकत ग्वालियर के इस तहखाने में नहीं है, सरदारसाहब। (प्रस्थान)

[लौह द्वार बन्द होने की ध्वनि। थोड़ी देर बाद सरदार आगे बढ़ता है।]

सरदार : नरसिंहराव ! (कोने में जंजीरों और बेड़ियों की खनखनाहट)

नरसिंह : (कंदरा के भीतर से आता हुआ क्षीण स्वर) कौन ? गढ़पति ? समय हो गया क्या ?

सरदार : नरसिंह !

नरसिंह : यह किसकी आवाज है ? मैं... और कोई आवाज नहीं सुनना चाहता । एक बस मौत की आवाज । मैं... मैं तैयार हूँ ।

सरदार : नरसिंह, मैं हूँ सरदार जिन्सेवाले ।

नरसिंह : सरदार जिन्सेवाले... नहीं-नहीं, यह धोखा है । (जंजीरों की पुनः खनखनाहट) अंधेरे के रेगिस्तान में... ज्योति की मरीचिका ।... यह धोखा है ।

जिन्से० : मैं इधर हूँ ।

नरसिंह : (फिर जंजीरों की खनखनाहट) आप... आप... सच ही सरदार जिन्सेवाले हैं ? ...यहां इस तहखाने में ? ओ...

जिन्से० : इधर आओ, नरसिंहराव, इधर । उफ़... तुम्हारी यह हालत है ! ...नरसिंहराव, मेरे बन्धु ।

नरसिंह : बन्धु ! आपका बन्धु अब कहां ? भूल जाइये सरदार जिन्सेवाले । मुझे भूल जाइये । मैं जिन्दगी की सीमा पार कर चुका हूँ । मौत का पैगाम आ चुका है ।... आप जाइये ।

जिन्से० : मैं परवाना लेकर आया हूँ ।

- नरसिंह : किसका ?
- जिन्से० : आलीजाह बहादुर सिंधिया का । ...तुम्हें फांसी नहीं दी जायगी, नरसिंहराव ।
- नरसिंह : (जंजीरों की खनखनाहट) सरदार, बस दो घड़ी का मेहमान हूं...आप दिल्लगी न करें ।
- जिन्से० : तुम्हें जिन्दा रहना है, नरसिंह ।
- नरसिंह : जिन्दा ? (खोखली हंसी) जिन्दा ! (जंजीरें खनक उठती हैं ।)
- जिन्से० : बैठ जाओ, नरसिंह । मैं बैठकर ही बातें करूंगा ।
- नरसिंह : (बैठते हुए) मैं एक महीने में बातें करना भूल गया । यह आवाज...यह आवाज...क्या मेरी ही है ? और आप...मैं क्या आपको ही देख रहा हूं ? क्या सुन रहा हूं ? आप जो कहते हैं, क्या...क्या वह सच है ? (सावेश) सच है ?
- जिन्से० : (भग्न स्वर) नरसिंह...मेरे बन्धु...नरसिंह तुम्हें देखा नहीं जाता । उफ्...
- नरसिंह० : आपकी आवाज में निराशा है । ...आप सिसक रहे हैं सरदार । ...तो ... तो मैंने गलत ही सुना । आप मुझे छुड़ाने नहीं आये हैं । आप आये हैं दिलासा देने । ...लेकिन दिलासा क्यों, सरदार ? मौत की छाया मुझपर पड़ चुकी है । ...उसकी ठंडी बेदर्द उंगलियों की मेरी गर्दन प्रतीक्षा कर रही है । दिलासा देना बेकार है । ... आप जाइये ।
- जिन्से० : नरसिंह, सिंधिया ने फांसी का हुक्म रद्द कर दिया है ।

- नरसिंह : किसलिए ? (कुछ रुककर खोखले स्वर में) क्या सच मैं उजाले की राह पर चल सकूंगा ?
- जिन्से० : काश मैं यह कह सकता !
- नरसिंह : (सभीत सशंक स्वर) तब ?
- जिन्से० : तुम्हें यहीं रहना है। फांसी नहीं, लेकिन जीवनभर कारागार।
- नरसिंह : कारागार। (साग्रह) सरदार, मैं विनती करता हूँ (कंपित स्वर) मुझे मौत चाहिए। आप सिंधिया के पास जाइये।
- जिन्से० : कई बार मिल चुका हूँ उनसे।...लेकिन व्यर्थ !
- नरसिंह : मैं नहीं जानता किस कसूर में मुझे गिरफ्तार किया गया है। क्यों मुझे मौत की सजा दी गई ? क्यों मुझे फांसी नहीं दी जा रही ?
- जिन्से० : नरसिंह, मैं तुम्हारा मित्र हूँ। मुझसे कुछ मत छिपाओ।...तहखाने का द्वार बन्द है और गढ़पति दूर है।
- नरसिंह : मेरे पास छिपाने के लिए क्या है ?
- जिन्से० : सच बताओ, क्या...क्या निजाम अली की पहरेदार टुकड़ी से तुम्हारी जान-पहचान थी ?
- नरसिंह : थी।...अगर उन लोगों से जान-पहचान न होती तो क्या इतनी आसानी से निजाम अली के पड़ाव में आ-जा सकता था ?
- जिन्से० : तुम्हें ... मालूम है कि तुम्हारे बताये हुए स्थान पर ही...उस दिन हम लोगों की तोपें चढ़ाई गई

और...

नरसिंह : और उनकी गोलाबारी ने निजाम के आते-जाते दस्तों पर सितम ढा दिया था ।

जिन्से० : हां ! तुम्हारी खबर मौके से आई । लेकिन जब वे तोपें तैयार की जा रही थीं तब ठीक वहीं दुश्मन की गोलियों की बौछार आई ।

नरसिंह : भाऊसाहब ने बताया था ।...मैं अबतक नहीं समझ पाया हूं कि गोलियों की वह बौछार कहाँसे आई ।...दुश्मन के बन्दूकोंवाले दस्ते उस मोर्चे पर थे ही नहीं । आठ-दस पहरदारों की टुकड़ी को छोड़कर...

जिन्से० : पहरदारों की टुकड़ी, जिनसे तुम्हारी जान-पहचान थी ।

नरसिंह : (आहत) आपका मतलब...आपका...

जिन्से० : मेरा नहीं सिन्धिया महाराज का ख्याल है कि तुम्हारे इशारे से ही वह गोलियों की बौछार आई और...

नरसिंह : (सावेश) झूठ ।...सरदार जिन्सेवाले, यह सरासर झूठ है ।...मुझे नहीं मालूम कि गोलियों की बौछार क्यों और कहाँसे आई, लेकिन मेरे इशारे से ? ...उफ्...यह झूठ है । यह मिथ्यारोप है ।...क्या आप इसपर यकीन कर सकते हैं ?

जिन्से० : नहीं, मैंने इसपर कभी यकीन नहीं किया ।

नरसिंह : और परशुराम भाऊ ?

जिन्से० : उन्होंने भी नहीं ।...हम लोगों को कभी यकीन

नहीं हुआ। लेकिन सिन्धिया महाराज तुम्हें आधा मुसलमान कहते हैं।

नरसिंह : आधा मुसलमान ?

जिन्से० : उस दिन तुम्हारी वे बातें। हिन्दू और मुसलमान दोनों के कल्याण की मांग।

नरसिंह : तो मुझे अपनी उस मांग के लिए दण्डित किया जा रहा है ?

जिन्से० : यह कहना भी गलत होगा, क्योंकि युद्ध के बाद निजाम और मराठों की सन्धि की अन्य शर्तें तो अभी पूरी नहीं हुई हैं, लेकिन एक शर्त पूरी हो गई है।

नरसिंह : वह क्या ?

जिन्से० : मराठा-पंथ और निजाम अली दोनों की तरफ से वह घोषणा कर दी गई है, जिसके लिए तुमने जोरों से मांग की थी।

नरसिंह : सच सरदार ? ...क्या हिन्दू-मुसलमानों को धर्म की आजादी दे दी गई ?

जिन्से० : मराठा और निजाम दोनों के राज्यों में।

नरसिंह : गोवध पर मुनादी लगा दी गई ?

जिन्से० : दोनों राज्यों में।

नरसिंह : हिन्दू और मुसलमान एक ही परमात्मा की संतान हैं। उन्हें अपनी-अपनी पूजा-निमाज करने का अधिकार है।

जिन्से० : ये ही शब्द उस घोषणा में शामिल किये गए हैं। परशुराम भाऊ का विशेष आग्रह था।

नरसिंह : सरदार, परशुराम भाऊ के आग्रह से मैंने वह पुत्र

तोड़ा था, मेरी बात मानकर उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच टूटते पुल को जोड़ दिया ।

जिन्से० : लेकिन जिस बहादुरी से तुमने वह पुल तोड़ा, उसका पुरस्कार ?

नरसिंह : पुरस्कार ? इसका जवाब आप दीजिये, सरदार ।

जिन्से० : क्या जवाब दूँ नरसिंह । ...न जाने किसने सिधिया महाराज के कान भरे हैं, जो मेरी लाख मिन्नतें करने पर भी वह पिघलते नहीं, समझते नहीं । ... बहुत-बहुत विनती करने पर वह सिर्फ़ इस बात के लिए राजी हुए कि तुम्हें फांसी न दी जाय । लेकिन ...लेकिन नरसिंह, इस भ्वालियर के किले के तहखाने में आजीवन कारागार का हुक्म दे दिया है ।

नरसिंह : आजीवन कारागार ...

जिन्से० : नरसिंह, मैं फिर जाऊंगा सिधिया के पाम । कोशिशों में कसर न छोड़ूंगा ।

नरसिंह : (स्वप्नवत्) आजीवन कारागार । (बाहर पग-ध्वनि) ।

जिन्से० : गढ़पति आ रहा है । मैं चलता हूँ । (उठता हूँ) नरसिंह (उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए) उम्मीद मत छोड़ना ।

नरसिंह : उम्मीद ! (वही खोखली हँसी) ...सरदार, मैं मौत की उम्मीद का सहारा ले रहा था । आपने उसे तोड़ दिया । ...और अब यह जिन्दगी । यह गुफा की घिरी-घिरी जिन्दगी । किसके लिए ?

जिन्से० : समय काटने के लिए कुछ काम करना चाहो तो गढ़पति से कह दूंगा ।

नरसिंह : (वही खोया-सा स्वर) किसके लिए ? किसके लिए ?

जिन्से० : काश मैं बता सकता, नरसिंह ! ...लेकिन जिस पथ के तुम राही हो, वह लम्बा और सूना है । दिल बहलाव के लिए...

नरसिंह : (विचार-मग्न) ठहरिये सरदार ! मैं अधेरे की जिन्दगी में उजाले का ताना-बाना बुनूंगा (रुककर) शारदीया के लिए ।

जिन्से० : शारदीया ?

नरसिंह : आप शारदीया को नहीं जानते ? सरदार आप गढ़पति से कह दीजिये कि मेरे लिए एक छोटा-सा करघा मंगवा दें । हैदराबाद के मुसलमान कारीगरों का हुनर मेरी उंगलियों में बस गया है । सरदार ! वही मेरा संवल होगा । जबतक जिन्दा हूं, तबतक बुनता रहूंगा, रुपहले और सुनहरे पल्ले । हवा-सी हलकी, कुसुम-सी कोमल, चांदनी-सी झीनी (विभोर) चांदनी ! ...शारदीया...वही तो असली चांदनी है । ...मेरी कालकोठरी में उसीकी ज्योति बसेगी, शारदीया की ज्योति !

जिन्से० : शारदीया ! ...नरसिंह, तुम किसकी चवां कर रहे हो ?

नरसिंह : आप नहीं जानते शारदीया को ? विश्वसुदरी, मेरी चिरसंगिनी ! ओह ! उसका पुराना नाम

आपको नहीं मालूम ? मैं भी भूल चला था । उसका नाम है—(रुककर) लेकिन, नहीं, अब आपको बताने से क्या लाभ ?

[गढ़पति का प्रवेश]

गढ़पति : चलियेगा, सरदार जिन्सेवाले ।

जिन्से० : चलता हूं...गढ़पति । नरसिंह...मन को दूसरी ओर लगाओ । मैं करघे का प्रबन्ध कर दूंगा ।

नरसिंह : (पीठ मोड़ते हुए) क्या लाभ आपको बताने से ? किसीको भी बताने से ? ...नहीं, कौन मेरा दर्द बांटेगा ? क्यों बांटूं अपना दर्द ? नहीं, वही तो मेरा सहारा है, वही तो मेरा और तुम्हारा नाता है, शारदीया !

[कर्कश शब्द के साथ लोहे का दरवाजा बन्द हो जाता है और अंधेरा नरसिंह की अकेली छाया को घस लेता है ।]

तृतीय अंक

दृश्य एक

[दो वर्ष बाद पूना में शर्जेराव घाटगे का वही मकान, जो अब पहले की अपेक्षा सुव्यवस्थित और सुसज्जित है। खर्दा की विजय के उपरान्त मराठा-राज्य में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। बाजीराव द्वितीय पेशवा हैं। दौलतराव सिंधिया अभी तक पूना ही में हैं। नाना फड़नवीस की शक्ति समाप्त हो चुकी है और उन्हें सिन्धिया की ओर से शर्जेराव घाटगे ने बन्दी कर लिया है।]

सिन्धिया और शर्जेराव घाटगे मसनद के सहारे बैठे हुए नृत्य देख रहे हैं। रहीमन, नर्तकी की भूषा में, कथक नृत्य का प्रदर्शन कर रही है। दौलतराव झूमते जाते हैं। शर्जेराव घाटगे गहरी दृष्टि से दौलतराव की मुद्रा को देख रहा है। बीच-बीच में 'वाह वाह', 'बहुत खूब' 'कमाल ह', इत्यादि कहकर दोनों नर्तकी को बढ़ावा दे रहे हैं। नृत्य समाप्त होता है।]

सिंधिया : बहुत अच्छा ! बहुत खूब !

रहीमन : हुजूर की नवाजिश है। ...एक बोल और ?

शर्जेराव : थोड़ी देर बाद। ...अभी सरकार आराम करेंगे।

रहीमन : जो हुकुम ! (दरबारी ढंग से सलाम करके प्रस्थान)

सिंधिया : कमाल का नाचती है। घाटगेजी, नृत्य का आनन्द तो इन्हीं मुजरो में है। हमारे यहां के तमाशे और

लावनी तो देहाती चीजें हैं ।

शर्जेराव : जीहां ! मैंने खासतौर से लखनऊ के नवाब के दरबार में मुजरा करनेवाली इस नर्तकी को बुलाया है । लेकिन मेरे इस मकान में कोई ढंग का स्थान ही ही नहीं है, जहां मुजरा हो सके । यह तो आपकी कृपा है, जो यहां बैठना मंजूर किया ।

सिधिया : अपने महल में हमें जिन्दगी का लुत्फ उठाने का मौका ही कहां मिलना है, घाटगेजी ? आडम्बर !
...आडम्बर !

शर्जेराव : आडम्बर से घबड़ाइये मत, सिधिया महाराज । जिन्दगी के खेल में बहुत-सी पोशाकों की जरूरत पड़ती है । आपका महल रौबिली पोशाकों के लिए है और मेरी यह कुटिया...

सिधिया : छबीली पोशाकों के लिए । (हँसता है) बड़ी पते की बात कही आपने, घाटगेजी ! लेकिन कुटिया में क्यों रहें आप ! आपकी मेहनत और चतुराई से नाना फड़नवीस का महल हाथ में आया है ।

शर्जेराव : सच पूछिये तो नाना को बन्दी करके मैंने उनका उपकार ही किया है । अब फुरसत से पूजा-पाठ कर रहे हैं ।

सिधिया : (हँसकर) वह भी बड़ा आडम्बरी है । ...लेकिन नाना का महल खाली क्यों रहे ?

शर्जेराव : कंजूस का घर खाली रहने से भूतों का डेरा बन जाता

है, महाराज !

सिंधिया : (जोर-से हँसता है) और भूतों को भगाने के नुस्खे आपके पास हैं, घाटगेजी !

शर्जेराव : जीहां लाजवाब नुस्खे ! यही देखिये मुजरे की ताल और नर्तकी के हावभाव विकट-मे-विकट भूतों को मार भगा देंगे ।

सिंधिया : और...

शर्जेराव : मुगलिया दस्तग्वान के स्वादिष्ट कबाब, कोफ्तो की सुगन्ध ।

सिंधिया : वाह, वाह !

शर्जेराव : और सात समुद्र पार से लाई गई फिरंगी शराब... तेज और तीखी ।

सिंधिया : आपने उमका इंतजाम कर लिया ?

शर्जेराव : मजे से ।... उमका भी और... एक और जादू-गरनी का ।

सिंधिया : जादूगरनी ?

शर्जेराव : जीहां । (ताली बजाता है । एक अनुचर आता है ।) वे बोतलें लाओ और वह नई डिब्बिया भी ।...

[अनुचर जाता है]

सिंधिया : मौज और मस्ती के खजाने की कुजी मुझे आप ही ने पकड़ाई है, घाटगेजी ।

[अनुचर आता है । ब्राण्डी की बोतले और एक नक्काशीदार चांदी की डिब्बिया और चांदी की प्यालियां भी रखकर चला जाता है ।]

शर्जेराव : यह लीजिये, आलीजाह ! फिरंगी लोग ब्राण्डी कहते

हैं इसे । धीरे-धीरे सुख बढ़ाती है ।

सिंधिया : ढालिये, शर्जेरावजी, ढालिये ।

शर्जेराव : (प्याली में ब्राण्डी ढालता हुआ) और यह जो चांदी की डिबिया है, इसमें एक सब्जपरी बंद है । (किंचित् हँसी)

सिंधिया : देखें ! (डिबिया उठाकर खोलता है) गन्ध बहुत तेज है ।

शर्जेराव : दुनिया की सबसे कीमती अफीम ।

सिंधिया : अफीम ?

शर्जेराव : जीहां ! ... मराठे सरदार लेते हैं तो बस भंग, लेकिन नवाबों और शहनशाहों का नशा है, यह अफीम ... सातवें आसमान की सब्जपरी, मनो-हारिनी जादूगरनी ।

सिंधिया : (डिबिया में से अफीम निकालकर उंगलियों से टटोलता हुआ) सब्जपरी ! जादूगरनी ! क्या अवध का नवाब भी इसके मजे लूटता है ?

शर्जेराव : क्यों नहीं ! ... मिर्जापुर में फिरंगियों ने अफीम का नया कारखाना खोला है । वहींसे खासतौर से आपके लिए मंगाई है ।

सिंधिया : (प्याले से मदिरा पीता हुआ) मंगाइये, शर्जेराव, और मंगाइये ।

शर्जेराव : कम्बख्त फिरंगी, दाम बहुत लेते हैं ।

सिंधिया : अर्शाफियां मोहरें ... खजाने से जितनी चाहें ले लीजिये ।

शर्जेराव : क्षमा करें, सिंधिया महाराज का खजाना अभी भरा-

पूरा नहीं है ।

सिंधिया : भरने के दिन आ गये हैं । नाना की तिजोरियां...

शर्जेराव : अभी हाथ नहीं लगी हैं, आलीजाह ।

सिंधिया : निजाम का चौथ ...

शर्जेराव : अभी उसका निपटारा कहां हुआ है ? और फिर आपकी वे दोनों विमाताएं, यमुनाबाई और लक्ष्मी-बाई ।

सिंधिया : भूतों का नुस्खा तो आपके पास है, शर्जेरावजी, लेकिन इन चुड़ैलों का कोई इलाज नहीं है क्या ?

शर्जेराव : है क्यों नहीं, आप मेरे ऊपर छोड़ें तो । दो साल से आप चिट्ठी-पत्री भेज रहे हैं । लेकिन जिनपर कोड़े पड़ने चाहिए, उनको चिट्ठियां भेजने से क्या फायदा !

सिंधिया : कोड़े ? ... यमुनाबाई और लक्ष्मीबाई पर कोड़े ?

शर्जेराव : आपको हुकूमत करनी है, महाराज ! औरत हो या बच्चा, अगर कांटे की तरह चुभता हो तो उसे पीसना होगा—फावड़े की चोट सहनी होगी ।

सिंधिया : आपकी बुद्धि और ... आपके कोड़े पर मुझे पूरा भरोसा है ।

शर्जेराव : भरोसा तो आप ढाई बरस से करते आ रहे हैं, इसी-लिए नानासाहब का आश्रय छोड़कर मैं आपकी सेवा में आ गया ।

सिंधिया : मैंने भी कागल की किलेदारी आपको वापस दिलाई, अपनी पूना की फौज का अधिकार आपको दिया । बोलिये, और क्या चाहते हैं, घाटगेजी ?

शर्जेराव : चाहता हूं कि आपको हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी सल्तनत का मालिक बनता देखूं । देखूं कि नाना फड़नवीस आपके पैरों तले पड़ा हो, पेशवा बाजीराव आपकी मुट्ठी में हो, फिरंगी आपसे खौफ़ खायें और दिल्ली का सिंहासन आपकी पदचाप सुनकर थर्रा उठे ।

सिंधिया : (प्याला आगे करता हुआ) ढालिये और ढालिये शर्जेराव । फिरंगी ग़राब मजेदार है ।

शर्जेराव : (मदिरा ढालते हुए) जिस तरह मदिरा ढालने के लिए मुझे आपने माकी माना है, उसी तरह हुकूमत की हाला ढालने का भी एकमात्र अधिकार मुझे दीजिये ।

सिंधिया : हुकूमत का माकी ! (पीता है)

शर्जेराव : जीहां, हुकूमत का माकी ! शर्जेराव घाटगे को अपना दीवान बनाइये—अपना प्रधान मंत्री ।

सिंधिया : प्रधान मंत्री ! . . मुझे सोचने का समय दीजिये, शर्जेरावजी ।

शर्जेराव : सोचने का समय । अगर आपकी तरफ से सोच-विचार मैं ही कर लूं तो आपका कितना सरदर्द बच जाय ?

सिंधिया : हूं । (पीता है)

शर्जेराव : भारतवर्ष की एकच्छत्र सल्तनत आपकी राह देख रही है, महाराज ।

सिंधिया : एक बात है, शर्जेरावजी ।

- शर्जेराव : सब अड़चनें दूर करने का भार मुझपर ।
- सिंधिया : मेरा सिंहासन आधा खाली पड़ा है । ढाई वर्ष से प्रतीक्षा कर रहा हूं ।
- शर्जेराव : हूं । (रुक जाता है)
- सिंधिया : देखता हूं कि आपको भी सोच-विचार की जज़ीरें बांधे हुए हैं ।
- शर्जेराव : आप ठीक कहते हैं । लेकिन अब नहीं । ब्राह्मण-पुत्री सिन्धिया घराने में जायगी ।
- सिंधिया : बिल्कुल पक्की बात ?
- शर्जेराव : बिल्कुल पक्की । एक महीने में ही शादी कर ली जाय ।
- सिंधिया : तो कीजिये तैयारी । विवाहोत्सव इस शानवान से हो, जैसा पूना-नगरवासियों ने आजतक कभी देखा ही न हो ।
- शर्जेराव : ऐसा ही होगा । अवश्य होगा । लेकिन सिन्धिया महाराज, शर्जेराव कच्चे काम में हाथ नहीं डालता ।
...यह सौदा है और सौदे में साफ़ बात होनी चाहिए ।
- सिंधिया : साफ़ बात !
- शर्जेराव : जीहां, साफ़ बात ! ...प्रधान मंत्री बनाने के आज्ञा-पत्र पर आपको आज ही हस्ताक्षर करने होंगे ।
- सिंधिया : लेकिन यहां कहां ?
- शर्जेराव : उसका प्रबन्ध मैंने कर लिया है । थोड़ी देर नर्तकी आपका मनोरंजन करेगी । मैं अभी हाज़िर हुआ ।
(जाता है ।)

सिंधिया : सौदा ।...अच्छा ही सौदा रहा । (पीता है ।)
[रहीमन का पुनः प्रवेश । नृत्य की तैयारी करती
ही है कि इतने में दूसरी ओर से सरदार जिन्सेवाले
का प्रवेश ।]

सिंधिया : कौन ? ...सरदार जिन्सेवाले ? आप यहां ?
(रहीमन से) ए बाई, तुम जाओ ।...फिर
बुलाऊंगा । (रहीमन का प्रस्थान) यहां कैसे आये
सरदार ?

जिन्से० : यह मैं क्या देख रहा हूं, आलीजाह ! ...यह नर्तकी
और ये शराब के प्याले ।...

सिंधिया : हा-हा-हा ! एक ही सिक्का और दो रुख ! एक ही
शरीर और दो पोशाक ! एक अपने महल में पहनता
हूं और एक यहां ।...तुम यह सब नहीं समझोगे
जिन्सेवाले ।

जिन्से० : सब समझता हूं, आलीजाह । लेकिन कौन-सी
पोशाक असली है ?

सिंधिया : नवाबों और शहनशाहों की कौन पोशाक असली
होती है और कौन नकली ?

जिन्से० : सिन्धिया महाराज का अपना बाना इतना प्रभाव-
शाली है कि नवाबी पोशाक की जरूरत ही क्यों
पड़े?

सिंधिया : यही तो तुम दकियानूसी सरदार नहीं समझते
हो ।...खैर, बताओ क्यों आये हो इस बार ?

जिन्से० : आलीजाह, आप जानते हैं पिछले ढाई वर्षों से हर
छः माह पर आपकी सेवा में ग्वालियर से आता

रहा हूं। ग्वालियर में आपकी प्रजा आपके दर्शन के लिए तरस रही है। यहां के झंझटों को छोड़कर वहां नहीं चलियेगा ?

सिंधिया : झंझट ? ...ठीक कहते हो। पूना में अनेक झंझट हैं। ...लेकिन, एक नया झंझट जो उठ खड़ा है, उससे नहीं बचना चाहता।

जिन्से० : कौन-सा वह नया झंझट है, महाराज ?

सिंधिया : एक महीने बाद सिन्धिया की प्रजा अपनी महारानी का अभिनंदन करेगी।

जिन्से० : जय हो महाराज की ! बड़े हर्ष का समाचार है। कौन भाग्यशालिनी होंगी महारानी ?

सिंधिया : इसकी घोषणा कल सुनोगे।

जिन्से० : तब तो आलीजाह विवाहोत्सव के उपरान्त आप दोनों को ग्वालियर आना ही होगा।

सिंधिया : आयेंगे। अगर हम दोनों न आ सके तो महारानी को अवश्य भेजूंगा। वहां का दान-पुण्य और ब्राह्मण-भोज निपटाना होगा उन्हें।

जिन्से० : ऐसी खुशी के मौके पर अपनी पुरानी विनती दोहराऊं तो क्षमा करेंगे, आम्नीजाह।

सिंधिया : कौन-सी विनती ?

जिन्से० : नरसिंहराव को छोड़ दिया जाय।

सिंधिया : अरे, धीरे बोलो।

जिन्से० : क्यों ?

सिंधिया : शर्जेराव घाटगे को यह नहीं मालूम है कि उसे फांसी नहीं दी गई है।

- जिन्से० : तो अब बता दीजिये और यह भी कह दीजिये कि इस शुभ घड़ी पर आप उमे कारागार से भी मुक्त कर रहे हैं।
- सिंधिया : (दबी आवाज में) तब तो शुभ घड़ी अवश्य टल जायगी।
- जिन्से० : क्या मतलब आपका, महाराज ?
- सिंधिया : तुम नहीं समझोगे, सरदार, तुम नहीं समझोगे।
- जिन्से० : मैं तो इतना समझता हूं कि नरसिंहराव ब्रेकसूर है।
- सिंधिया : इस बात का निर्णय महारानी करेंगी।
- जिन्से० : (साश्चर्य) आलीजाह।
- सिंधिया : बस, यही ठीक रहेगा। ...विवाह के बाद जब महारानी ग्वालियर जायंगी तभी इस बात का निपटारा हो जायगा। ...सरदार जिन्सेवाले, तुम लौट जाओ।
- जिन्से० : फिर निराश लौट जाऊं ?
- सिंधिया : निराश क्यों ? ग्वालियर जाकर स्वागत की नैया-रियां करो।
- जिन्से० : एक आशा तो पूरी हुई, आलीजाह। दूसरी आशा का भी सूत्र नहीं छोड़ूंगा।
- सिंधिया : सरदार, अब तुम चलते बनो। (सरदार चलने को प्रस्तुत) ...ठहरो। ...तुम लालपरी और मब्जपरी को जानते हो ?
- जिन्से० : (भौचक्का) जी...जी...
- सिंधिया : नहीं जानते ? ...यह देखो (ब्राण्डी की बोतल

उठाता है) यह है लालपरी । (अफीम की डिब्बिया उठाता है) यह है सब्जपरी । ग्वालियर में दोनों का इंतजाम रखना ।

जिन्से० : ग्वालियर में ? वहां तो—(बोल नहीं पाता)

सिन्धिया : वहां तो गंगाजल और तुलसीदल ही मिलेगा । (ठहाका मारकर हंसता है) तो जाओ, मैं नहीं आऊंगा । महारानी ही पहुंचेंगी । जाओ, चलते बनो । (शराब ढालने लगता है । जिन्सेवाले का हतप्रभ प्रस्थान) ठेठ देहाती सरदार । आओ मेरी लालपरी मेरी सब्जपरी । (पीता है । .. नशा चढ़ने लगा है ।) अरे, वह कहां गई ? कहां गई ? कोई नहीं ? (ताली बजाता है । रहीमन का प्रवेश ।)

रहीमन : हुकुम, आलीजाह ।

सिन्धिया : ठीक । अब ठीक । बहुत बहुत ठीक । मैं भी तो कहूं मेरी इंद्रपुरी सूनी क्यों है । शुरू करो करो शुरू

[शर्जेराव का प्रवेश । हाथ में लिपटा हुआ कागज ।]

शर्जेराव : ठहरो ! .. (सिन्धिया के सामने लिपटे कागज को खोलकर रख देता है ।) सिन्धिया महाराज, दस्तखत कीजिये ।

सिन्धिया : (नशे की झोंक में अचकचा कर) ऐं ।

शर्जेराव : (कलम पकड़ता हुआ ।) कीजिये दस्तखत यहां । यहां (सिन्धिया दस्तखत करता है ।)

.....ठीक बहुत ठीक, आलीजाह ! लाइये कलम ! यह कलम और यह आज्ञापत्र । (नर्तकी से) शुरू करो नर्तकी । बेधड़क नाचो । (नर्तकी नृत्य शुरू करती है ।) मस्त होकर नाचो ।(नृत्य एक साथ तीव्र हो जाता है । नर्तकी जोरों से घूमती है ।) नाचो, खूब नाचो । (उन्मत्त-सा, मानो सिन्धिया की उपस्थिति भूल गया हो ।) आज से तुलजाजी उर्फ सखाराम उर्फ शर्जेराव घाटगे सिन्धिया महाराज का प्रधान मंत्री हुआ । प्रधान मंत्री हा-हा-हा । नाचती रहो, नर्तकी, नाचती रहो.....

[धुंधरू और पायल की तीव्र झंकार के बीच घाटगे की उन्मत्त हंसी, एक अजब समाँ पैदा कर देती है । सिन्धिया के मुख पर नशे और भय की विचित्र मुद्रा ।]

दृश्य दो

[ग्वालियर का वही तहखाना । नरसिंहराव उसी करघे पर बुन रहा है और गाता भी जाता है ••• “भोनी बीनी धर दीनी चदरिया”]

[गढ़पति का प्रवेश]

गढ़पति : तुम तो बिलकुल कबीरदास ही बन गये, नरसिंह राव ।

नरसिंह : आइये, गढ़पतिजी (किंचित् हँसी) । पता नहीं, कबीरदास कैसा कपड़ा बुन पाते थे, मोटा-झोटा या रेशमी । मेरा नमूना देखेंगे ?

गढ़पति : कितने ही महीनों से बुन रहे हो, लेकिन अभी तक दिखाया ही नहीं ।

नरसिंह : आज पूरा हो रहा है । अभी दिखाता हूँ । आप तो आज दिनभर ही गायब रहे ।

गढ़पति : आज दिनभर तो दम मारने की फुरसत ही नहीं मिली । आलीजाह बहादुर की शादी के बाद पहली बार महारानी पधारी हैं । ब्राह्मण-भोज, कंगालों को भोज, कैदियों को छूट—भला एक काम है ! ••• ऐसे में गढ़पति को फुरसत ? ••• (लम्बी सांस खींचकर जीने पर बैठ जाता है ।)

नरसिंह : महारानी दयालु स्वभाव की हैं ?

गढ़पति : बहुत । मुझे तो उम्मीद थी कि और कैदियों के साथ तुम्हारी रिहाई का भी हुकुम दे देंगी । मगर..... अभी तक तो.....

नरसिंह : मेरी रिहाई ? गढ़पति मेरे लिए तो दुनिया के सब सामान यहींपर मौजूद हैं ।

गढ़पति : इन महीनों में तुम्हारे अन्दर जो परिवर्तन आ गया है उसे देखकर मैं दंग हूँ । मैंने इन तहखानों में कैदियों को पत्थर से सिर टकराते देखा है, इसलिए कि उन्हें एक पल के लिए चांद, सूरज, आसमान की झलक मिल सके, एक पल के लिए बाहर की रंगीनियों पर दृष्टि डाल सकें । लेकिन तुम हो कि जंजीरें खोल देने पर भी तुम्हारे पैर बंधे ही रहते हैं !

नरसिंह : आप ठीक कहते हैं । लेकिन इस सूनी और अंधी कोठरी में मैं अकेला नहीं हूँ ।

गढ़पति : वाह भई ! सरदार जिन्सेवाले को छोड़कर और तो किसीको इजाजत ही नहीं मिली है तुमसे मिलने की ।

नरसिंह : लेकिन आप ही तो मेरे उन मित्रों को मेरे पास छोड़ गये हैं, गढ़पति ।

गढ़पति : ऐं !

नरसिंह : देखिये उस दिन आपने कहा था कि बगीचे में गुलाब की झाड़ी में दो नई कलियां खिली हैं । उस दिन से रोज वे कलियां मेरे निकट रही हैं । मैं उन्हें देख रहा हूँ, अपने हरेक बंधन को तोड़ते हुए, ऐसे

ही जैसे रात की तलहटी में उषा का फूल खिलता है । उनकी शर्मीली सुगन्ध इस तहखाने के पत्थरों में बस गई है ।

गढ़पति : नरसिंहराव, उनमें से एक को तो मेरे बच्चे ने तोड़ लिया और दूसरा डाल पर ही मुरझा गया ।

नरसिंह : लेकिन मेरे पास न तो वे फूल मुरझाते हैं और न कोई उन्हें तोड़ता है । वे तो मेरी नन्हीं बस्ती में शामिल हो गये हैं, ऐसे ही जैसे यह चंचल पीलख मेरे चारों ओर फुदकती रहती है ।

गढ़पति : पीलख ?

नरसिंह : आपने पीलख चिड़िया को नहीं देखा, गढ़पति ? उस दिन तहखाने में इस झरोखे में से हवा के सहारे उसका तीव्र संगीत मेरे निकट उतरा और मैं समझ गया कि घनी अमराइयों में उसके पीले पंख ऐसे ही जगमगाते होंगे, जैसे घनी भौहों के नीचे किसीके सुन्दर नयन पलक मारकर बन्द हो जायं ।

गढ़पति : इस झरोखे में से पीलख क्या, तितली का भी आना मुश्किल है ।

नरसिंह : लेकिन मेरी पीलख पर कोई बंधन नहीं है, गढ़पति ।
(झरोखे की ओर निर्निमेष देखते हुए) नीले आसमान की रागिनी में उसकी पीली ज्योति एक मधुर तान है और इस तंग कोठरी की दबी मुस्काम के पर्दे पर उसकी उड़ान खिलखिलाती हुई हँसी ।
(रुककर) कभी-कभी तो गढ़पतिजी, इस तहखाने में बहुत भीड़ जमा हो जाती है ।

गढ़पति : भीड़ ? तुम भी नरसिंह, पागलों की-सी बातें करते हो !

नरसिंह : सुबह-शाम जब मन्दिरों में आरती होती है तो घंटों की ध्वनि और मृदंग की ताल उड़-उड़कर मेरे पास आती और मंडराती है । मैं ही तो वह मंदिर हूँ जिसपर घंटों की वे ध्वनियां टूटी पड़ती हैं, जैसे उपासकों की भीड़ ; कोई वृद्धा माताओं जैसी दुर्बल लेकिन आतुर, कोई नवोढ़ा वधुओं जैसी मंथर और मधुर, कोई बालिकाओं जैसी चंचल और ढीठ । और गढ़पतिजी, इन सबके ऊपर इन्हें लांघती हुई एक और आवाज मेरे पास आती है ।

गढ़पति : (सहानुभूतिपूर्ण स्वर में) तुम सोचते बहुत हो, नरसिंहराव !

नरसिंह : गढ़पति, आपने कभी सवेरे की अज्ञान सुनी है ? जैसे आकाश के सारे बादल पिघलकर एक स्वच्छ और शुभ्र और शान्त धारा के रूप में धरती पर गिर रहे हों । इस तहखाने के रूखे, निष्प्राण पाषाणों से उमड़कर यह धारा मुझे सराबोर कर देती है और मुझे लगता है कि जैसे मस्जिद की मीनारें मेरे कानों में गुपचुप बातें करती हों ।...मैं अकेला कभी नहीं रहता, गढ़पति ।

गढ़पति : नरसिंहराव, मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारी बातें सुनकर मैं हँसूँ या डरकर भाग जाऊँ !

नरसिंह : डर ?

गढ़पति : हाँ ! डर । अगर उस दिन तुम्हें फांसी हो जाती तो

भूत बन जाने पर तुम शायद ऐसी ही बातें करते जैसी आजकल करते हो ।

नरसिंह : लेकिन गढ़पति इस किले के तो भूत भी आपसे डरते होंगे ।

गढ़पति : कभी मुलाकात तो नहीं हुई, लेकिन लोग कहते हैं कि चांदनी रात में भूत निकलते हैं ।...आज तो शरद् की चांदनी है, पर...

नरसिंह : (मानो कुछ याद आया हो) आज शरद् पूर्णिमा है क्या ?

गढ़पति : हां, बाहर चांदनी छिटक रही है । तुम्हारे झरोखे में से छनछनकर आती होगी, लेकिन दीपक के प्रकाश में मालूम नहीं देता ।

नरसिंह : मैं दीपक बुझा देता हूं । (बिचारमग्न) शरद् पूर्णिमा !

गढ़पति : बुनोगे कैसे ?

नरसिंह : बुन चुका ।...इस कपड़े का सौन्दर्य जैसा चांदनी की किरणों में निखरेगा वैसा दीपक के प्रकाश में कहां ?

गढ़पति : दीपक बुझाना तो ठीक न होगा । लाओ, मैं बाहर रख दूं ।

[दीपक उठाकर बाहर लगाता है । कोठरी का वातावरण बदल जाता है । गाढ़े अन्धकार के कोने में झरोखे से चांदनी की धवल मुस्कान आप ही जगमगा उठती है । नरसिंह करघे में से कपड़ा निकालकर चांदनी की ओर बढ़ता है ।]

नरसिंह : (आप-ही-आप) शरद् पूर्णिमा !

[नेपथ्य से पगध्वनि]

गढ़पति : कोई आ रहा है, नरसिंहराव । मालूम होता है, मेरी बुलाहट है । तुम्हारा हुनर कल देखूंगा । दीपक की जरूरत है ?

नरसिंह : जी नहीं, चांदनी की रोशनी काफी है मेरे लिए ।

गढ़पति : (वहीं से) तो दरवाजा बन्द कर रहा हूं ।

[दरवाजा बन्द करने की आवाज]

नरसिंह : (स्वगत) दरवाजा ! आपने तो मेरी स्मृति के दरवाजे को खोल दिया । (पगध्वनि दूर होती सुन पड़ती है) शरद् पूर्णिमा ! और आज...आज जब मैं इसे पूरा कर रहा हूं । (किंचित् हँसी) लेकिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है... (झरोखे से छनकर आती हुई आभा मानो नरसिंह के शब्दों का वाहन बन जाती है । उसकी आवाज में भावुकता नहीं, उन्मुक्त स्मृति है । चेहरे की मुद्रा ऐसी है मानो सच ही किसीसे बात करता हो ।) तुम्हारे ही रूप का ताना-बाना तो मेरी उंगलियों को गति दे रहा था ।...और आज चांदनी आई है तो तुम्हें भी आना है ।...तुम न जाने कहां हो ? शायद पूना में । शायद कागल में ।...कागल ! यक्ष का संदेश बादल ले जा सका । लेकिन चांदनी चलती ही नहीं ।...इस चांदनी के अंचल का दूसरा छोर शायद कागल में है ।...तुम्हें क्या मालूम ; मैं कहां हूं ?...नहीं मालूम कि मैं कैदी हूं । नहीं

मालूम कि राष्ट्रद्रोह के अपराध में पाषाणों के इस पिंजरे में... हमेशा के लिए बन्द हूँ। अच्छा ही है कि तुम्हें यह सब नहीं मालूम। ... शायद, शायद, तुमने सोचा हो कि मैं खर्दा के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। ... वीरगति ! यह सुनने पर तुमने क्या किया होगा ? तुम्हारे नयनों में आंसू— शबनम के मोती छलछला उठे होंगे। और शायद विषाद की रेखाएं खिंच गई होंगी तुम्हारे उस मनोहर मुखड़े पर, ऐसे ही जैसे विधवा के चेहरे पर विश्व की सर्वव्यापी वेदना बर्फ की तरह जम जाती है। ... बर्फ की तरह जमी वेदना, कंपाने-वाली लेकिन स्वच्छ, ... निर्मल ... शुभ्र ... जैसे ... जैसे ... यह चांदनी ! (किंचित् हँसी) चांदनी और विधवा ! खूब ! तीन बरस हुए कागल में... शरद् पूर्णिमा को तुम्हें छोड़ा था... तब जान पड़ा कि तुम्हारी चंचल हँसी ही चांदनी है। ... और उस दिन पूना में तुमसे विदा लेते समय लगा था मानो चांदनी ही लाजभरी सुहागिन बनने को तैयार होकर आई हो। और आज... श्वेत अकलुष बर्फ में धोई-सी इस चांदनी में तुम आ रही हो, विधवा बनकर। ... (आह्लाद) शारदीया, सभी कुछ तो तुम्हारा शृंगार बन जाता है, बचपन की हँसी, सुहागिन की लाज और... और यह विधवा की वेदना। ... शारदीया ... शारदीया।

[इस बीच में जल्दी-जल्दी बढ़ते कदम नेपथ्य से सुनाई पड़ते हैं । दरवाजा खुलता है । व्यस्त दशा में गढ़पति का प्रवेश]

गढ़पति : नरसिंह ! नरसिंह ! तुम क्या कर रहे हो ? सुनो
... सुनो ! स्वयं महारानी यहां आई हैं ।

नरसिंह : कौन महारानी ? (भग्नस्वप्न से खिन्न स्वर)

गढ़पति : अरे, नई महारानी और कौन ?

नरसिंह : (प्रपीड़ित मुद्रा) आपके हाथ जोड़ता हूं गढ़पति, मेरी कोठरी में महारानी को न लाइये । मैं इस समय किसी और की प्रतीक्षा कर रहा हूं ।

गढ़पति : किसी और की ? यहां और कौन आ सकता है ?

नरसिंह : आप नहीं समझेंगे ।

गढ़पति : वही तुम्हारे गुलाब की कलियां या वह पीली चिड़िया या...या... (हँसकर) वह घंटों की आवाज ?

नरसिंह : (वृद्ध गंभीर स्वर) नहीं, आज की शरद् पूर्णिमा में कोई और मुझसे मिलने आ रही है और...और... महारानी से मिलने की मुझे फुरसत नहीं है ।

गढ़पति : (पितृ-तुल्य झिड़क) नरसिंहराव, तुम जितने अच्छे कारीगर हो उतने ही मूर्ख भी । ...महारानी क्या मेरे कहने से रुक जायगी ? वह सुनो । (नेपथ्य में पग-ध्वनि) वे लोग आ पहुंचे । ...देखो ; मैं तो तुमसे यह कहने आया था कि मौका मिले तो महारानी को भेंट दे देना ।

नरसिंह : भेंट ?

गढ़पति : हां-हां, वही रेशम का कपड़ा, जो तुमने इतने महीनों

में बना है, वही जो मुझे दिखानेवाले थे । बस वही नई महारानी को भेंट दे देना । खुश हो गई तो तुम्हारे भाग्य ही खुल जायेंगे । शायद आलीजाह से कहकर रिहाई करा दें । समझे । (चलने को उद्यत)

नरसिंह : वह कपड़ा ? (आवेश में) नहीं-नहीं, गढ़पति—

गढ़पति : (जाते हुए) बेवकूफी मत करो । मैं चलता हूँ... वे लोग आ पहुँचे । जाता हूँ । (दरवाजा बन्द करने की आवाज) ।

नरसिंह : (पुकारते हुए) गढ़पति ... ओह ! चले गये । (कुछ रुककर । कम्पित स्वर) यह कपड़ा ... यह तुम्हारी स्मृतियों का ताना-बाना । यह महारानी को दूँ ? ... असंभव ! ... (संवेदनशील मुद्रा में) ओह ! शारदीये ! ये लोग कितने नासमझ हैं ... कितने नादान । (रुककर) ये पत्थर समझदार हैं, जो तुम्हें मेरे पास आने देते हैं, जो रात में मुंदते कमल की पखुड़ियाँ बन जाते हैं । लेकिन दुनिया-वालों का कोलाहल ! चलो, तुम मुझे यहां से ले चलो, अपने चांदी से जगमगाते अम्बर में । राजाओं और महारानी की चमक-दमक से परे, युद्ध और हलचल से दूर, बहुत दूर, जहां तारे गाते हैं, जहां नीले आसमान की झनकार ज्योति की लय पर झूमती है, जहां—(नेपथ्य में पग-ध्वनि बहुत निकट आकर रुक जाती है) ऐ ! तुम कहां जा रही हो, शारदीये ? (दरवाजा खुलता है । बाहर से मशालों

और दीपकों का उग्र प्रकाश कोठरी पर टूट पड़ता है। चांदनी लुप्त हो जाती है) शारदीये ! शारदीये ! शारदीये ! (सिसकने की आवाज । सरदार जिन्सेवाले और महारानी का प्रवेश)

जिन्से० : (पुकारते हैं) नरसिंहराव !

नरसिंह : (सिसकता है)

जिन्से० : नरसिंहराव !

नरसिंह : (उसी भांति) नहीं-नहीं ।

जिन्से० : नरसिंहराव, इधर देखो ।

नरसिंह : कौन ? (आवाज पहचानकर मस्तक उठाता है ।)
कौन सरदार जिन्सेवाले ?

जिन्से० : हां, ... नरसिंह, महारानी आई हैं, उनके दर्शन करो और उनके हाथ से ...

नरसिंह : नहीं ! (मस्तक नीचा, कर लेता है) नहीं सरदार ! क्या आप नहीं जानते कि आज शरद पूर्णिमा है और किसके दर्शन का मैं आज भिखारी हूँ ? ... उसके पास था, बहुत पास, लेकिन आप लोगों ने ... ओह ... (फिर सिसकता है) शारदीये !

जिन्से० : नरसिंहराव ! आंखें खोलो । तुम्हारी शारदीया सामने खड़ी है ।

नरसिंह : (उठकर विस्मित) कौन ?

जिन्से० : महारानी बायजाबाई सिन्धिया ।

नरसिंह : (आगे बढ़ता हुआ) कौन ?

बायजा० : मैं ही हूँ, नरसिंहराव । (पलभर का मौन जिसमें मानो युग बीत जाते हैं । "गिरा अनयन नयन बिन्

बानी" का वह अपूर्व क्षण !)

जिन्से० : महारानी, मैं मशालवालों के साथ बाहर खड़ा हूँ। आप विलंब न करें।

नरसिंह : सरदार !

जिन्से० : नरसिंह, समय कम है। (प्रस्थान—फिर मौन !
कोठरी में फिर अंधेरा और चांदनी)

बायजा० : (नीरव बंधन को तोड़ते हुए) मैं ही आई हूँ,
नरसिंहराव... एक दिन तुमने शिकायत की
थी कि मैंने तुम्हारी पगध्वनि नहीं पहचानी।
(मधुर उपालम्भ) और आज ?

नरसिंह : (मंद तुले हुए स्वर में) महारानी बायजाबाई ?

बायजा० : तुम्हारे लिए नहीं।

नरसिंह : महारानी को मैं नहीं पहचानता।

बायजा० : ऐसा न कहो, नरसिंह।

नरसिंह : यकीन नहीं होता।

बायजा० : जानना चाहते हो कि यह सब कैसे हुआ ?

नरसिंह : क्या फायदा जानकर ?

बायजा० : मेरा स्वार्थ है कि तुम जानो... सुनो ! यह सब
बाबा के हठ से हुआ है।

नरसिंह : घाटगेजी का हठ, मेरे विरुद्ध ?

बायजा० : हां, वह चाहते थे कि कागल की किलेदारी उन्हें
वापस मिले !

नरसिंह : मिल गई ?

बायजा० : हां, आलीजाह सिन्धिया ने यशवंतराव को निकाल
बाहर किया।

नरसिंह : (हँसकर) इतने छोटे काम के लिए सिन्धिया महाराज को कष्ट ... यह तो शायद मैं ही कर सकता था ।

बायजा० : लेकिन तुम बाबा को सिन्धिया की दीवानी तो नहीं दे सकते थे ।

नरसिंह : दीवानी !

बायजा० : शर्जेराव घाटगे आज सिन्धिया महाराज के दीवान हैं ।

नरसिंह : ओह !

बायजा० : तुम नहीं जानते नरसिंह कि मेरे ऊपर क्या बीती है ! किन आकांक्षाओं के यज्ञ में मैं आहुति बनाई गई हूँ ।

नरसिंह : लेकिन सिन्धिया महाराज ने तुम्हारे ही लिए क्यों हठ किया ?

बायजा० : रूपासक्ति, जिसे वह प्रेम कहते हैं ।

नरसिंह : कब से ?

बायजा० : पूना में उसी शरदोत्सव से । तुम भी तो मौजूद थे ।

नरसिंह : याद आया । ... और मैं हर्ष से उछल पड़ा था यह देखकर कि सबकी निगाह तुम्हारे ऊपर थी ।

बायजा० : वही मेरा काल बन गई । आलीजाह सिन्धिया ने हठ कर लिया कि बायजाबाई उनके अन्तःपुर में पहुंचे । और ... और ... बाबा को अपना सौदा ठीक करने का अवसर मिल गया । ... ओह, नरसिंह !

नरसिंह : लेकिन तुम ?

बायजा० : मैं तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा करती रही । खर्दा की

लड़ाई समाप्त हो गई । लेकिन तुम न लौटे । एक दिन निश्चय किया कि घर छोड़कर भाग जाऊं । कहीं-न-कहीं तो मिलोगे ही । लेकिन...तभी बाबा ने बताया कि तुम युद्ध में मारे गये । (प्रोड़ित स्वर) यहां आने पर मालूम हुआ कि यह सब झूठ था । लेकिन ... लेकिन ... तबतक बहुत देर हो चुकी थी ।

नरसिंह : (गहरा निःश्वास) खैर, एक राष्ट्रद्रोही के कलंक-मय स्पर्श से तुम बच गई ।

बायजा० : मैं जानती हूं कि वह सब झूठ है । मैं जानती हूं कि तुम निर्दोष हो ।

नरसिंह | : तुम्हें किसने बताया ?

बायजा० : स्वयं सिन्धिया महाराज ने ।

नरसिंह : तो वह जानते थे ?

बायजा० : उस वक्त नहीं, जबकि तुम्हें गिरफ्तार किया गया । उन्हें उस वक्त यह गुमान भी न था कि गोलियों की वह बौछार दुश्मनों की तरफ से नहीं आई थी, बल्कि...

नरसिंह : बल्कि ?

बायजा० : बल्कि मेरे बाबा की ही करतूत थी ।

नरसिंह : कौन वह जहरीला सांप है, जो घाटगेजी के मन में कुंडली मारकर फन फैलाये बैठा है ?

बायजा० : हमेशा भड़कनेवाली आकांक्षा का सर्प ! उसीकी फुंकार के शिकार तुम बने, नरसिंह ! और... मैं भी...

नरसिंह : मुझे फांसी दिलवाने से क्यों रुक गये घाटगेजी ?

बायजा० : वह तो यही समझते हैं कि तुम्हें फांसी दे दी गई है।
उनसे छिपाकर सरदार जिन्सेवाले के आग्रह पर
सिन्धिया महाराज ने तुम्हारे वध की आज्ञा नहीं
दी।

नरसिंह : आप घाटगेजी को बता दें। उनका अरमान अधूरा
क्यों रहे ?

बायजा० : सिन्धिया महाराज ने मुझे इजाजत दे दी है कि तुम्हें
रिहा करने की आज्ञा दे दूं।

नरसिंह : रिहाई ! (किंचित् हास्य) महारानी, किस
जीवन के लिए रिहाई, किस नियामत के लिए
रिहाई ?

बायजा० : (आहत स्वर) तुम भी मुझे महारानी ही कहोगे,
नरसिंह !

नरसिंह : बायजाबाई, जिसे तुम रिहाई कहती हो, वह मेरा
कारागार होगी।

बायजा० : यह बेदर्द पत्थरों का तहखाना, यह अंधेरे की घुटन।
... तुम्हें इनसे दूर होना है।

नरसिंह : बायजाबाई, इस तहखाने का आकाश सीमाहीन है,
इसकी टिमटिमाती ज्योति में सहस्रों सूर्य भासमान
हैं। क्या तुम भी नहीं समझोगी मेरी इस सीधी,
गहरी बात को ?

बायजा० : (गहन वेदना) कुछ-कुछ समझ रही हूं।

नरसिंह : तुम मुझे छुड़ाने आई हो, मेरी भी एक भेंट स्वीकार
करो। ... यह देखो बायजाबाई। (महीन जाले-

सी झीनी बारीक साड़ी को चांदनी के प्रकाश में फैला देता है। इतनी बारीक है वह साड़ी कि चांदनी में घुली-मिली-सी दीख पड़ती है।)

बायजा० : ओह ! यह साड़ी । ... यह दिव्य सौन्दर्य । ... कितनी बारीक, जैसे सबेरे का कुहासा, कितनी मुलायम, जैसे नई कोपल । ... यह तुमने कहां पाई ?

नरसिंह : देखती हो यह करघा ?

बायजा० : तुमने बुना है इसे ?

नरसिंह : अपना वायदा पूरा करने के लिए । तुमने कहा था न ? आज ... (भारी आवाज) आज, वह तिथि आई है ।

बायजा० : नरसिंह !

नरसिंह : (गौरवपूर्ण स्वर) साड़ी पांच गज लम्बी है । लेकिन वजन केवल पांच तोला है ।

बायजा० : पर नरसिंह, इतना बारीक बुनने के लिए तो तुम्हें...

नरसिंह : यह देखो । (उंगली उठाकर दिखाता है) उंगली के छिद्र में से चांदनी की किरण ।

बायजा० : उफ ! नरसिंह, तुमने अपनी उंगली में सूराख कर लिया ! नरसिंह !

नरसिंह : याद है ? उस शरद् पूर्णिमा को चलते समय तुमने अपनी उंगली के खून से मुझे टीका दिया था ।

बायजा० : एक बूंद खून, लेकिन ... यह तो ...

नरसिंह : मैं उस रक्त की बूंद को भूला नहीं था, बायजाबाई ।
... आज मैं तुम्हें विदा दे रहा हूँ । (बायजाबाई

सिसकती है) तुम रो रही हो, बायजाबाई । रोती क्यों हो ? तुम्हारे टीके ने मुझे बचाया । ... और ... यह ... साड़ी ... यह मेरा रक्तदान ... यह अंचल ... यह ... तुम्हारे नये जीवन में तुम्हारी रक्षा करे ।

बायजा० : नया जीवन ! सांसों की जंजीरें ! और तुम ...

नरसिंह : मेरी जंजीरें । बायजाबाई ये जंजीरें नहीं हैं ।

[नेपथ्य से सरदार जिन्सेवाले की आवाज—
“महारानी, समय हो रहा है”]

बायजा० : (संभलकर) तुम चलो, नरसिंह । आज्ञा-पत्र मेरे पास है ।

नरसिंह : नहीं, बायजाबाई । (दृढ़ स्वर) मैं यहीं रहूंगा, तुम जाओ, महारानी । तुम जाओ बायजाबाई, आंसुओं में नहीं, मुस्कान में भीगती हुई ।

बायजा० : (चलते-चलते) नरसिंह !

नरसिंह : और मैं यहीं रहूंगा, क्योंकि तुम यही हो । महारानी नहीं, बायजाबाई नहीं, लेकिन तुम । (बायजाबाई के जाते हुए कदमों की आवाज) ... तुम, मेरी शारदीया ! मेरी शारदीया ... तुम, जो मेरी हो, हमेशा थी, हमेशा रहोगी । ... [मंद संगीतध्वनि जो तीव्र होकर समाप्त हो जाती है । प्रखर प्रकाश जो फिर पर्दे की छाया में लुप्त हो जाता है ।]

[पटाक्षेप]



परिशिष्ट

हिन्दी नाटक : अखिल भारतीय माध्यम के रूप में

मुझे हाल में १८वीं सदी में लिखे गये दो नाटकों की पाण्डुलिपियां देखने को मिली। इन नाटकों की भाषा हिन्दी है (उनके पद्यांश ब्रजभाषा में हैं और गद्यांश खड़ी बोली में, जिसमें दक्खिनी पुट है) और उनकी लिपि तेलुगु है। इन नाटकों को तमिलनाडु में खेलने के लिए लिखा गया था और इनके लिए प्रायः तमिल व तेलुगु भाषी अभिनेता चुने गये थे। नाटकों की विषय-वस्तु कृष्णलीला से संबंधित है, तत्कालीन परम्परा के अनुसार। पाण्डुलिपियों से इस बात का पता चलता है कि ये नाटक तंजोर के मराठा राज-दरबार में खेलने के लिए लिखे गये थे और वहां उनका अभिनय भी किया गया था। इस तरह १८वीं सदी के अंत में लिखे गये इन नाटकों में एक अनोखा सिलसिला देखने को मिलता है: मराठा संरक्षण, तेलुगु अभिनेता, तमिल नृत्यकार और गायक और हिन्दी भाषा।

इससे कुछ समय पहले, १६वीं और १७वीं सदी में, ऐसी ही बात भारत के एक दूसरे भाग—असम-घाटी—में देखने को मिलती है। असम में वैष्णव-आंदोलन के सूत्रधार और भक्त शिरोमणि शंकरदेव ने अनेक नाटक लिखे और उनमें संस्कृत, हिन्दी, मैथिली और उस समय की प्रचलित असमिया (जो आज की असमिया से काफी भिन्न है) से मिली-जुली एक मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया। शंकरदेव के शिष्य माधवदेव, गोविन्द अट्टा और कुछ दूसरे लोगों ने नाटक लिखने का यह रिवाज बराबर कायम रखा और अभी हाल तक, जब इस वैष्णव-साहित्य की भाषा को समझने-वाले आसाम में ज्यादा नहीं रहे, इसी परम्परा और ऐसी मिली-जुली भाषा में नाटक लिखे जाते रहे और उनको असम के मठों (सत्रों) में खेला जाता रहा। इन नाटकों को खेलना इन मठों की कार्यप्रणाली का एक अंग ही बना दिया गया। ये नाटक कुछ अंश में उसी युग में नेपाल और मिथिला के राजदरबारों के लिए लिखे गये नाटकों के अनुरूप हैं। शंकरदेव के नाटकों

के अभिनेता प्रायः उनके असमिया भक्तगण ही होते थे, यद्यपि यह भी सम्भव है कि उनके लम्बे ब्रज-प्रवास में ब्रज के कुछ कलाकार इस दल में शामिल हो गए हों। असम की यह परम्परा और नाटक के क्षेत्र में यह सफलता उसकी बिल्कुल अपनी है और इससे पता चलता है कि उस क्षेत्र के प्रतिभाशाली कवियों और कलाकारों ने कितने अपूर्व ढंग से हिन्दी का उपयोग किया।

अभी हाल में, उन्नीसवीं सदी में, अनेक अहिन्दी-भाषियों द्वारा होनेवाला हिन्दी-नाटक और मंच का अनूठा विकास भी हमें देखने को मिलता है। १८७० में पेस्तनजी फ़ामजी ने 'दि ओरिजिनल थियेटर कम्पनी' खड़ी की, जो बाद में पारसी थियेटर कहलानेवाली नाटक-कंपनियों की लड़ी में पहली थी। पारसी थियेटर की मंडलियों का संचालन, इनके नाटकों का अभिनय और उनके नाटककारों की सूची बड़ी दिलचस्प है। वे गुजराती, पारसी, एंग्लो-इंडियन, मराठे आदि थे। इन मंडलियों ने जो हिन्दी नाट्य साहित्य प्रस्तुत किया, उसके साहित्यिक महत्व के बारे में भले ही कुछ लोगों की अलग राय हो, पर इसमें कोई शक नहीं कि उस समय यह एक बड़ी ही समृद्ध और लोकप्रिय हिन्दी नाट्य परम्परा थी और यह मुख्यतः अहिन्दी-भाषियों की ही देन थी।

पारसी थियेटर की यह परम्परा-विशेष भारतीय सिनेमा ने अपना-ली। भारतीय फिल्म-निर्माताओं द्वारा अधिकतर हिन्दी फिल्म ही बनाई जाती हैं। इस सदी के दूसरे दशक के अंत में, जब बोलपट बनना शुरू हुआ, प्रायः प्रत्येक हिन्दी फिल्म महाराष्ट्रवासियों, बंगालियों, तमिलों, आंध्र-वासियों, गुजरातियों और पारसियों आदि विभिन्न अहिन्दीभाषियों के सम्मिलित प्रयत्न का ही परिणाम थी। किसी भी हिन्दी फिल्म तैयार करने में भाग लेनेवालों की सूची देखने से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं-वाले लोग किस प्रकार इकट्ठे होकर आपसी मेल-जोल और समझ-बूझ के साथ अपनी कला की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी के माध्यम को काम में ला रहे हैं।

असम या तेलुगु क्षेत्र के भक्त नाटककारों या पारसी थियेटर के सूत्रधारों या भारतीय फिल्म बनानेवालों के ऊपर संविधान का कोई बंधन

नहीं था कि वे हिन्दी माध्यम को काम में लायें। इसके पीछे कोई राजनैतिक इबाव नहीं था। इसपर भी उन्होंने हिन्दी-नाटक को अपना लिया और नाटक को जनसाधारण के बीच ले गये। पीछे चलकर जब हिन्दी-नाटक केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के साहित्यिकों तक ही सीमित रह गया, तभी वह मंच की दृष्टि से निर्जीव हो गया। न तो व्यवसायी लोग उसके साथ रहे, और न ऐसे व्यक्ति जिनमें संगठन करने की क्षमता थी। साथ ही प्रतिभाशाली अभिनेता भी उसकी ओर नहीं खिंचे। परिणामतः पिछले तीस सालों में हिन्दी-रंगमंच शिक्षा-संस्थाओं एवं शौकीन अव्यावसायिकों तक ही सीमित रह गया। उसके पास जनसाधारण तक पहुंचने के साधन नहीं रहे और सबसे बड़ी बात यह है कि उसकी पद्धति और भंगिमा भी सीमित और संकीर्ण हो गये हैं, जिससे वह निष्प्राण-सा हो रहा है।

इसके अतिरिक्त अहिन्दी-क्षेत्र से हिन्दी-नाटकों को प्रस्तुत करने के लिए जो प्रतिभा और साधन मिलते थे, वे अब हिन्दी-फिल्म या अहिन्दी-नाटक को ही उपलब्ध होने लगे। हिन्दी-फिल्म टैकनीक की दृष्टि से आकर्षक है, पर कथावस्तु और प्रस्तुतीकरण की शैली की दृष्टि से अप्रौढ़ है और नाटक की कोटि के योग्य नहीं। अहिन्दी-नाटक यद्यपि सुसंस्कृत होते हैं, तथापि कई मानी में साहित्यिक हिन्दी-नाटक से भी ज्यादा सीमित। वे विस्तृत क्षेत्र में नहीं खेले जा सकते और इसलिए व्यावसायिक दृष्टि से सफल नहीं हो पाते। फिर भी प्रादेशिक नाटक ने भारतीय रंगमंच को आदर्शवादी उत्साह से प्रेरित किया है। परन्तु छोटे-छोटे क्षेत्रों में ही सीमित रहने के कारण प्रादेशिक रंगमंच की बुनियाद अनिश्चित ही रहेगी।

हिन्दी-रंगमंच किसी खास प्रदेश का थियेटर नहीं होना चाहिए, यद्यपि हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में भी लोक-नाटक हमेशा की तरह स्थानीय अभिव्यंजनाओं को अपनाता रहेगा और देश के विभिन्न भागों के जीवन की झांकियां दिखाता रहेगा। लेकिन हिन्दी-नाटक को एक सजीव और जनसाधारण तक पहुंच सकनेवाले माध्यम के रूप में देश के विभिन्न भागों, साधनों और प्रतिभा के व्यक्तियों के प्रयास के सहारे पनपना चाहिए। वे लोग हिन्दी-नाटक को भी उसी तरह अपना समझने लगे, जैसे वे हिन्दी-फिल्म को समझते हैं। ऐसा संभव करने के लिए हिन्दीभाषियों, विशेषतः नाटककारों

और आलोचकों को, आगे बढ़ना पड़ेगा और एक ऐसे साहित्यिक माध्यम को जन्म देना होगा, जो व्यावसायिक थियेटर की आवश्यकताओं को भी पूरा कर सके। यह सच है कि पारसी थियेटर कंपनियों के संचालकों की कोई साहित्यिक पृष्ठभूमि नहीं थी और उन्हें संस्कृत-नाटक की परम्परा की बहुत कम जानकारी थी; पर यह बात बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र आदि के वर्तमान कलाकारों पर लागू नहीं होती।

वास्तव में अच्छे हिन्दी-नाटकों की कमी को देखते हुए यह और भी जरूरी है कि यह काम अहिन्दीभाषियों को सौंपा जाय। कुछ अन्य भाषाओं में आज का नाटक अधिक सम्पन्न है और उन नाटकों को हिन्दी में लिया जा सकता है और उसी प्रदेश के कलाकार ऐसे नाटकों के हिन्दी-अभिनय में भाग ले सकते हैं। यदि काननबाला, प्रमथेश बरूआ, पंकज मल्लिक, शान्ता-राम, साहू मोदक बिना किसी हिचकिचाहट के हिन्दी-फिल्मों में काम कर सकते थे और प्रादेशिक लहजे के साथ या उसके बिना ही हिन्दी बोल सकते थे, तो आज के अहिन्दीभाषी अभिनेता-अभिनेत्री हिन्दी-नाटक से क्यों अलग रहें? यदि ऐसी हिचकिचाहट होती, तो ग्रेटा गाबो जैसी अभिनेत्री अंग्रेजी फिल्म में ऐसा नाम कैसे कमा पाती? ताज्जुब यह है कि अहिन्दी-कलाकारों द्वारा हिन्दी-नाटकों में भाग लेने की अनिच्छा और हिन्दी-आलोचकों द्वारा भाषा के उच्चारण आदि पर टीका-टिप्पणी करने की आदत हाल में ही दृष्टिगोचर हुई है। पहले शायद ही कभी ऐसी परिस्थिति उठती थी। इसमें सन्देह नहीं कि एक साधारण दर्शक (राजधानी के अभिजात्य वर्ग की बात दूसरी है) उड़ीसा या मणिपुर की एक प्रतिभासंपन्न अभिनेत्री के हिन्दी शब्दों के अशुद्ध उच्चारण को आपत्तिजनक नहीं समझेगा।

१९५७ और १९५८ में दिल्ली के ग्रीष्म-नाटक-समारोह में मणिपुर, केरल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि की मंडलियों ने हिन्दी-नाटक खेले थे। इनमें जिनका अभिनय अच्छा था, उनके प्रादेशिक उच्चारण ने दर्शकों का रसभंग नहीं किया। यह ठीक है कि हिन्दी और संस्कृत के कई शब्दों का केरल और मणिपुर की मंडलियों द्वारा किया गया उच्चारण कभी-कभी दिल्ली के दर्शकों की समझ में नहीं आता था, पर प्रायः अशुद्ध उच्चारणों पर ध्यान नहीं दिया गया या उसकी कोई जरूरत नहीं रह गई, क्योंकि

